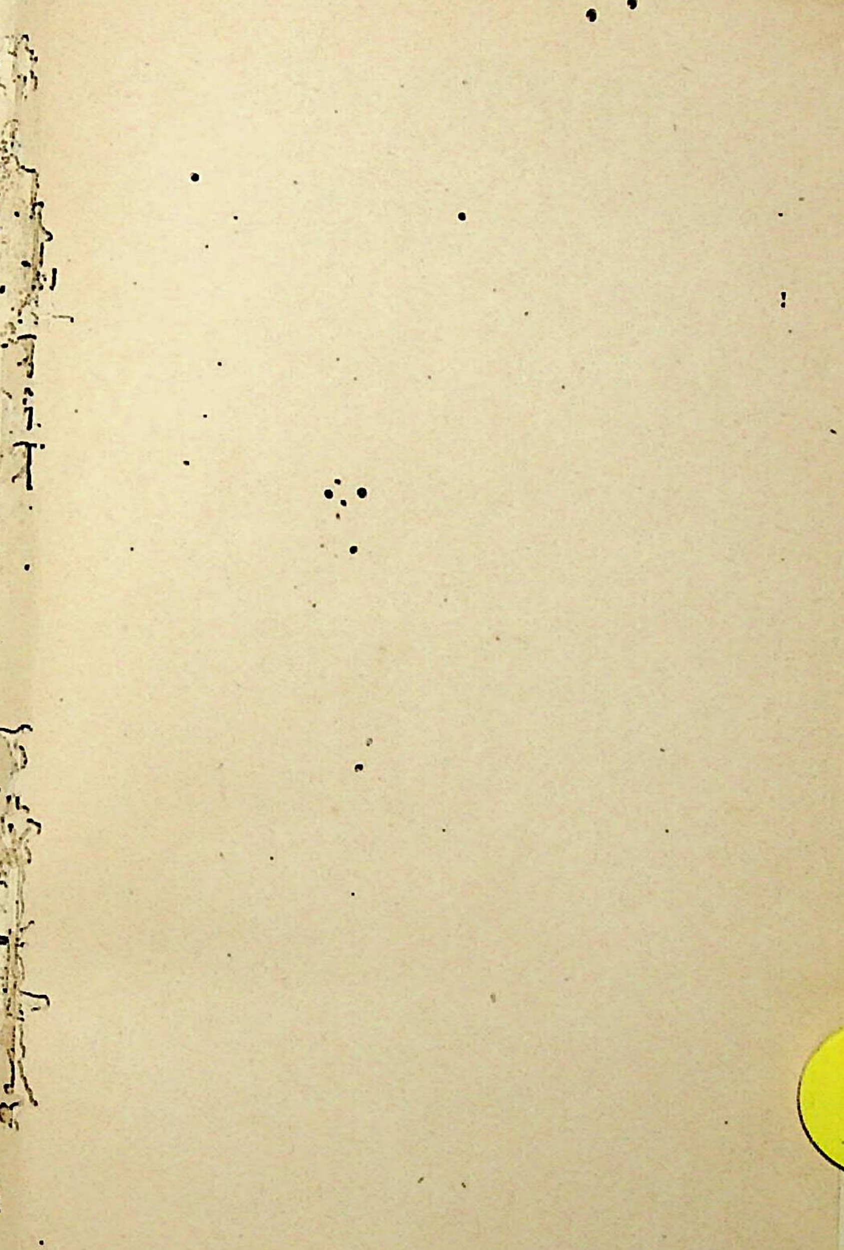
Vinod Kumar Rai XII C
Sarvoday Inter College Ghosi

काव्य-पारिजातम्



प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद



काव्य-पारिजातम्

[माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश की इन्टरमीडिएट परीक्षा में
संस्कृत प्रथम प्रश्न-पत्र के लिए स्वीकृत]

सम्पादक

पं० लक्ष्मीकान्त दीक्षित, एम०ए०
रीडर, संस्कृत-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

प्रकाशक
अशोक प्रकाशन मन्दिर
इलाहाबाद
दशम संस्करण
१९७३]
2123
[२ रु० ४९ पैसे

राष्ट्रीयगान

जनगणमन-अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता।
पंजाब सिन्ध गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल वंग,
विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधितरंग।
तव शुभ नामे जागे तव शुभ आशिष माँगे,
गाहे तव जय-गाथा।
जनगण-मंगल-दायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता।
जय हे जय हे जय हे।
जय जय जय, जय हे॥

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

सरस्वती-वन्दना

वितर वितर सिद्धिं चापि वृद्धिं समृद्धेः
शमय शमय तापांश्चाभिशापान् समस्तान् ।
घनकलुषविसारे चात्र सृष्टिप्रसारे
भव मम वरदा त्वं शारदे ! शुभ्रहारे ! ॥

(सम्पादकस्य)

विनोद रथ
कक्षा - ११स
विषय - संस्कृत
काव्य पारिजातम्
प्रथम प्रश्न पत्र

प्रस्तुत सङ्कलन के मूलभूत ग्रन्थ-रत्न—

(क) कविताविलास कालिदास का रघुवंश महाकाव्य

तथा

(ख) विश्वविभूति भवभूति का उत्तररामचरित नाटक

विषय-सूची

काव्य-भाग (Poetry)

नाटक-भाग (Drama)

टिप्पणियाँ

बिनोद कुमार राय

भूमिका

भारतीय संस्कृति का चरम-परम ज्योतिर्मय तत्त्व अध्यात्मवाद है और संस्कृत-साहित्य इस अध्यात्मवाद का मणिमय मुकुर है। भारतीय मनीषियों की ब्रह्म-साधना जहाँ एक ओर संस्कृत-साहित्य से प्रतिफलित हुई है वहाँ दूसरी ओर उनकी लोक-कल्याण की भावना भी इसी से शतशः प्रतिबिम्बित हुई है। संस्कृत का काव्य-साहित्य केवल मानव-भावना का शृंगार नहीं है, वह उसका परिष्कार भी है, ठीक उसी प्रकार जैसे संस्कृत का दर्शन, मानव की मनीषा का शृंगार नहीं है, अपितु उसकी ऋतम्भरा प्रज्ञा की चरम परिणति है। तात्पर्य यह है कि कालिदास और भास, भवभूति और बाण, जयदेव और जगन्नाथ की प्रतिभा का मधुर परिपाक है यह संस्कृत-साहित्य। देवी सरस्वती की शत-शत विभ्रम-भंगिमाओं की जन्मस्थली है यह संस्कृत-साहित्य।

प्रस्तुत कथन का उद्देश्य उसी उदात्त साहित्य की एक मधुमयी भूमिका उपस्थित करनी है। श्रव्य-काव्य के रूप से 'रघुवंश' का द्वितीय सर्ग तथा तृतीय सर्ग के सत्रह श्लोक संकलित हैं तथा दृश्य-काव्य का प्रतीक 'उत्तररामचरित' का तृतीय अंक है।

प्रस्तुत संकलन के प्रथम भाग में तपोवन का पावन वर्णन है। तपोवन ने अनादि-काल से भारतवर्ष के चित्र को अपनी कोमल, स्निग्ध छाया में— अपने प्राणों के अन्तस्तल में स्थापित कर, बड़े ही सुन्दर ढंग से पाला है। वैदिकयुग और बौद्धयुग—इन दोनों महान् युगों को, तपोवन ने ही धात्री के रूप में, धारण किया है। दिलीप का गोचारण, स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र के लिए, एक मौन संकेत है। गोसेवा प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र की मूल-भित्ति रही है अतः उससे हमें एक अभिनव संदेश भी मिलता है और भविष्य-पथ के लिए निर्देश भी।

उत्तररामचरित का तृतीय अंक हमें करुण भावना की उदात्त भूमिका का संस्पर्श कराता है। इसके पढ़ते ही हृदय मन्दाकिनी के निर्मल जल-प्रवाह की भाँति पवित्र हो उठता है और उसका कल्मष-कालुष्य स्वतः धुल जाता है।

प्रस्तुत संकलन के प्रथम भाग की भूमिका में कालिदास विषयक सभी ज्ञातव्य सामग्री सञ्चित कर दी गयी है। ठीक इसी प्रकार द्वितीय भाग की भूमिका में भवभूति की वाग्विभूति की संक्षिप्त आलोचना दे दी गयी है। तात्पर्य यह है कि इस संकलन में 'गागर में सागर' भरने का आनन्दमय प्रयास किया गया है। दोनों भागों के अन्त में क्रमशः पाठ्य-ग्रन्थों पर पुष्कल अभ्यासार्थ प्रश्न मिलेंगे और सब से अन्त में काव्य भाग तथा नाटक भाग पर व्याकरणात्मक, अलंकारात्मक तथा व्याख्यानात्मक टिप्पणियाँ मिलेंगी। उपमा अलंकार पर एक स्वतंत्र टिप्पणी, यथावसर, निवेशित कर दी गयी है। इस संग्रह के सम्पादक का विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक से छात्रों का पूर्ण कल्याण होगा तथा अध्यापक-बन्धुओं का भी पर्याप्त मनोरंजन होगा।

यह पुस्तक उत्तर प्रदेश राजकीय गजट में प्रकाशित इण्टरमीडिएट संस्कृत के प्रथम प्रश्नपत्र में निर्धारित नवीनतम पाठ्यक्रम को पूर्णतया विचार में रख कर संगृहीत की गई है। संग्रह करते समय रोचकता, सरसता, सरलता तथा शिक्षोपादेयता का निरन्तर ध्यान रखा गया है।

इस संकलन का सम्पादक उन सभी महाकवियों तथा सुधी विद्वानों का हृदय से ऋणी है, जिनकी रचनाओं से पुस्तक के कलेवर की श्रीवृद्धि हुई है।

आशा है कि इस संग्रह के अनुशीलन से विद्यार्थियों में अपने प्राचीन अतीत संस्कृत साहित्य के प्रति श्रद्धा एवं समादर के भाव परिपुष्ट होंगे। तथा उनमें प्रयत्नवाद, आशावाद तथा मानवतावाद की उदात्त चित्तवृत्तियों का, युगचेतना एवं राष्ट्रचेतना के अनुरूप मंजुल स्फुरण होगा।

'संस्कृत-पारिजात' का पराग और मकरन्द, छात्रों के सुकोमल मानस एवं हृदय को अपनी मधुर रमणीयता से आप्यायित करता रहे—यही कामना है और यही प्रार्थना भी—अन्त में मुझे एक प्रसिद्ध विद्वान् के शब्दों में यही कहना है कि—

स्वर्गे सुधास्वादनलोलुपास्ते सुराः प्रनृत्यन्तु सुराङ्गनाभिः।
वयं तु काव्यामृतपानतृप्ता विदग्धगोष्ठ्यां विहराम मोदात्॥

१-९-१९५७

—सम्पादक

कालिदासप्रशस्तिकुसुमाञ्जलिः

(राष्ट्रभारत्याम्)

चिरकाल रसाल ही रहा
जिस भावज्ञ कवीन्द्र का कहा,
जय हो उस उस कालिदास की!
कविता - केलि - कला - विलास की!

—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त
(साकेत, दशम सर्ग)

× × ×

विश्व-भारती कल्पलता के अमर सुमन-मकरन्द अमन्द,
युग-युगान्त का तिमिर चीर कर हुए प्रकाशित जिनके छन्द,
नग-अधिराज-शिखर, गौरव से, जिनके गाते गीत ललाम,
कवि-कुल-गुरु उन वश्यवाक् श्री कालिदास को सतत प्रणाम।

—श्री उदयशंकर भट्ट

(सुरभारत्याम्)

१. लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विवया गिरः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्॥

—दण्डिनः (षष्ठी शताब्दी ईसवी)

२. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते॥

—बाणस्य (सप्तम शताब्दी)

३. "अस्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदास-
प्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा एव वा महाकवय इति गण्यन्ते।"

—आनन्दवर्धनाचार्यस्य (नवम शताब्दी)

४. एकोऽपि जीयते हन्त! कालिदासो न केनचित्।
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥

—राजशेखरस्य (दशम शताब्दी)

५. साकूतमधुरकोकिलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतिलीलाकालिदासोक्तीः॥

—गोवर्धनाचार्यस्य (द्वादश शताब्दी)

६. पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

—(सुभाषितम्)

(आङ्ग्लभाषायाम्)

1. **Shri Aurobindo**—"Valmiki, Vyasa and Kalidasa are the essence of the history of Ancient India; if all else were lost, they would still be its sole and sufficient Cultural history."

2. **Ravindranath Tagore**—"The Beauty that Kalidasa adores is lit up by grace, modesty and goodness; in its range it embraces the whole universe. It is fulfilled by renunciation, gratified by sorrow and rendered eternal by religion.

3. **A. Macdonell**—"the narrative in the Raghuvansha moves with same rapidity, not being too much impeded by long descriptions. It abounds with apt and striking similes and contains much genuine poetry, while the style, for a Kavya, is simple though many passages are undoubtedly too artificial for the Everopean taste."

4. **A. B. Keith**—"The Raghuvansha may rightly be ranked as the finest Indian specimen of the mahakavya as defined by writers on poeties. In fact, Kalidasa represents the highest pitch of elegance attained in Sanskrit style of the elevated Kavya character."

कालिदास : एक परिचयात्मक अनुशीलन

(१) भूमिका—महाकवि कालिदास अमरभारती संस्कृतभाषा के सनातन शृङ्गार हैं। उनकी कोमल, ललित पदावली ने किस शब्द-शिल्पी को अभिभूत नहीं किया? उनकी प्रसादमयी भाषा ने किसे प्रभावित नहीं किया? और उनकी अनूठी कल्पना ने किस सहृदय के दिल पर डोरे नहीं डाले? आज केवल दिल्ली और कलकत्ता से नहीं, केवल लन्दन और न्यूयार्क से ही नहीं, अपितु मास्को और लेनिनग्राड तक से कालिदास की प्रशस्ति के मोहक स्वर सुनायी दे रहे हैं। नवनीत-सी मृदुल पंक्तियों में, भारतीय संस्कृति के प्राण-तत्त्व—अध्यात्मवाद—का ऐसा सबल, परिपुष्ट संविधान कालिदास के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? उनके काव्य-मार्ग को योगी अरविन्द ने समझा है, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने समझा है और कोटिशः संस्कृत के अनुरागियों ने उस सनातन मर्म को समझने की सतत चेष्टा की है। यह सब कुछ हुआ, किन्तु कालिदास के विषय में आज भी वह उक्ति सर्वथा खरी उतरती है जो प्रसिद्ध समालोचक मैथ्यू आर्नल्ड ने शेक्सपियर के विषय में कही है। वह उक्ति यह है :

Others abide our question.
Thou art free.
We ask and ask
Thou smilest and art still, outtopping knowledge.

(२) स्थिति-काल—हम भी महाकवि से बारबार प्रश्न करते हैं। आपका जन्म कब हुआ? उस समय देश में कौन राजा था? आप किस देश के निवासी थे? इत्यादि। महाकवि मन्द-मन्द स्मित से मुसकरा उठते हैं और फिर शाश्वत मौन में लीन हो जाते हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि वे ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में, आदि विक्रमादित्य के शासन-काल में, उज्जयिनी में रहते थे। प्रोफेसर क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय का यही निश्चित मत है, कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि वे गुप्तवंशी राजा

चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०-४१३ ई०) के समय में हुए थे। कीथ आदि विदेशी विद्वान् इसी मत के समर्थक हैं; अस्तु

(३) ग्रन्थ रचना

A महाकाव्य	(क) कुमारसम्भवम्।
	(ख) रघुवंशम्।
B गीतिकाव्य या खण्डकाव्य	(क) ऋतुसंहारम्।
	(ख) मेघदूतम्।
C रूपक-ग्रन्थ	(क) मालविकाग्निमित्रम् (नाटक)
	(ख) विक्रमोर्वशीयम् (त्रोटक)
	(ग) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (नाटक)

(४) रघुवंश—यह महाकाव्य केवल कालिदास के ही काव्यों में सर्वोत्कृष्ट नहीं है, अपितु समस्त संस्कृत के महाकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। पाश्चात्त्य विद्वानों का भी इस विषय में, पौरस्त्य विद्वानों से, ऐकमत्य है। इसी महाकाव्य के आधार पर ही, कालिदास का एक अपर पर्याय ही बन गया है—रघुकार। 'क इह रघुकारे न रमते'—यह एक सर्वजनप्रसिद्ध उक्ति है। सचमुच ही रघुवंश में कालिदास की प्रतिभा का पूर्ण परिपाक परिलक्षित होता है। उनके नाट्य-ग्रन्थों में ठीक इसी प्रकार 'शाकुन्तलम्' सर्वाधिक रमणीय नाटक है।

(५) रघुवंश की कथा—इस महाकाव्य में उन्नीस सर्गों के सीमित प्रदेश में ही, सूर्यवंशीय उनतीस राजाओं का विरुद-गान किया गया है। प्रथम राजा हैं—दिलीप और चरम राजा हैं—अग्निवर्ण। यदि रघुवंश का प्रारम्भ तपस्या और साधना की भूमिका में होता है तो उसका सकरुण अवसान विलासिता, कामुकता और लम्पटता की पंकिल भूमि में होता है। इस महाकाव्य में कुल मिला कर १५६८ श्लोक हैं।

(६) प्रस्तुत संकलन की कथा—इस संकलन में रघुवंश का द्वितीय सर्ग अविकल सम्मिलित है तथा तृतीय सर्ग के १७ श्लोक हैं, जो रघुजन्म की कथा को सम्पूर्णता प्रदान करते हैं। कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम में राजा दिलीप और उनकी मागधी पत्नी सुदक्षिणा उपस्थित हैं, और कुलगुरु के

आदेश से, सन्तानार्थ, कामधेनु की सुता नन्दिनी की गोचर्या के लिए प्रयत्न-शील हैं। रानी भी गाय के पीछे-पीछे कुछ दूर तक प्रतिदिन जाती हैं, फिर राजा उन्हें प्रतिदिन लौटा देते हैं और इक्कीस दिन तक गोचारण में लीन रहते हैं। बाइसवें दिन गाय, राजा की परीक्षा लेती है। एक शंकर का गण, सिंहरूप में गाय पर प्रहार करता है और राजा अपने प्राण-त्याग द्वारा भी, नन्दिनी को बचाने का लोकोत्तर संकल्प करते हैं। अन्ततः गाय प्रसन्न हो जाती है और अपना दूध एक दोने में दुहकर पी लेने के लिए राजा से कहती है। राजा कुलगुरु के आदेश से दूध पीकर अपनी राजधानी को आ जाते हैं। वहीं देवी सुदक्षिणा अन्तर्वत्नी होती हैं। तृतीय सर्ग के संकलित श्लोकों में रघुजन्म, उनका बाल्यकाल तथा उनके यौवराज्याभिषेक का वर्णन है। स्थूल रूप में कथा का यही कलेवर है।

(७) कालिदास के विचार—कालिदास जिस युग में अवतीर्ण हुए थे, उस युग में हिन्दू-संस्कृति का भास्कर सूर्य अपनी अनन्त रश्मियों से देदीप्यमान हो रहा था। साथ ही जैनधर्म और बौद्धधर्म के अहिंसात्मक विचारों का चतुरस्र व्यापक प्रचार हो रहा था। अतः ठीक-ठीक कहा जाय तो कहना चाहिए कि यह हिन्दूधर्म का सन्धिकाल था। इस समय विवेकी विद्वान् अपने प्राचीन ग्रन्थों का संशोधित, युगानुकूल, लोकमान्य, रूपान्तर उपस्थित कर रहे थे। इन्द्र, कुबेर आदि प्राचीन देवता अस्तमित हो रहे थे और उनके स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रतिष्ठापित हो चुके थे। वर्णाश्रम की मान्यताएँ बद्धमूल थीं। कालिदास भी वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के सच्चे उन्नायक तथा पोषक थे और उनके काव्यों तथा नाटकों में उनकी इस तत्त्व-दृष्टि के प्रबल प्रमाण पदे-पदे मिलते हैं।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में कालिदास की पूर्ण निष्ठा थी, अर्थात् पुरुषार्थचतुष्टय की साधना ही, कालिदास की दृष्टि में, मानव-जीवन की चरम साधना है।

कालिदास ने प्रणय का भी बहुरंगी चित्रण किया है, किन्तु उनका प्रेम, रोमिओ और जूलियट के प्रेम के सदृश वासना की उन्मत्तता से विषाक्त नहीं हो गया है, अपितु तपस्या और पश्चात्ताप के पावन तत्त्व, उसमें अमृत-

रस घोलते रहते हैं। 'शाकुन्तलम्' में कालिदास का प्रणय-विषयक आदर्श सर्वात्मना मूर्तिमान् हो उठा है।

(८) कालिदास की शैली—कालिदास सरस वाणी के रस-सिद्ध कवि थे। छन्द-छन्द में उनके प्रतिभा-पराग के सुरभित कण बिखरे मिलते हैं। उनकी रचना में सर्वत्र प्रसादगुण मिलता है। प्रसादगुण का यह लक्षण शास्त्रकारों ने दिया है—

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥
(साहित्यदर्पण)

इसका अर्थ है—जिस प्रकार अग्नि, सूखी लकड़ी को तत्काल ही व्याप्त कर लेता है उसी प्रकार जो गुण सहृदय जनों के मानस को तत्क्षण ही व्याप्त कर लेता है, वही प्रसादगुण है। इस गुण का उपयोग सभी रसों में तथा सभी रचनाओं में होता है। सामान्यतः प्रसादगुणमयी कविता सरल सरस भाषा में उपनिबद्ध होती है। प्रसादगुण और वैदर्भी रीति का प्रायः सहभाव होता है। रीति शब्द का अर्थ है पद-रचना या पद-संघटना। रीति का लक्षण साहित्यदर्पण में यह है—

पदसंघटना रीतिरंगसंस्थाविशेषवत्
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।

वैदर्भी रीति का लक्षण उसी ग्रंथ में यह है—

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।

भाव यह है कि वैदर्भी रीति में पद-रचना या तो समासरहित होती है और या फिर स्वल्पसमासवती होती है। वृत्ति का यहाँ पर अर्थ है—समास। अब रह गया रस। वह तो संस्कृत-काव्य का आत्म-तत्त्व है, जिसका निर्वाचन करते हुए शास्त्रकार कभी थकते नहीं, किन्तु फिर भी जो ब्रह्मतत्त्व की ही भाँति आज भी अनिर्वचनीय ही है। वाग्देवतावतार मम्मट ने इन शब्दों में रस के स्वरूप का कुछ आकलन किया है—

'चर्व्यमाणतैकप्राणो विभावादिजीवितावधिः पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः, पुर इव परिस्फुरन्, हृदयमिव प्रविशन्, सर्वांगीणमिवालिंगन्,

अन्यत् सर्वमिव तिरोदधत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन्, अलौकिकचमत्कार-कारी शृंगारादिको रसः।'

वस, यही उस रस-तत्त्व का स्वरूप हैं, जिससे कालिदास की कविता पूर्णतया आप्लुत हैं।

यह तो हुआ कविता का आत्म-पक्ष। कला-पक्ष की ओर से भी कालिदास कभी उदासीन नहीं रहे। यों तो उनके काव्य में उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, रूपक, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता आदि अनेक अलंकारों की नक्षत्र-माला स्फुरण करती रहती है, किन्तु उपमा तो उनका श्रेष्ठ अलंकार है। 'उपमा कालिदासस्य'—इस उक्ति को कौन नहीं जानता। केवल उनकी उपमाओं पर ही अंग्रेजी में एक पुस्तक, श्री के० सी० पिल्लई ने लिखी है। ये उपमाएँ नाना प्रकार की हैं। व्याकरणशास्त्र से भी अनेक उपमान, कालिदास ने ढूंढ़ निकाले हैं।

व्यंजकता, कालिदास की कविता का एक नवीन गुण है। किसी वात को सुस्पष्ट शब्दों में न कहकर, केवल व्यंग्य-रूप में कहना कोई सरल काम नहीं है। यह व्यंग्य अर्थ, हवा के पंखों पर तिरता हुआ, सहृदयों के कर्णों में वड़ी देर तक, उसी प्रकार गूंजता रहता है जैसे घण्टा का टंकार, झंकार में परिणत होकर वड़ी देर तक कर्णशष्कुली में गूंजता रहता है। कथानक के मूल रूप को प्राचीन ग्रन्थों से लेकर, उसमें अपनी रंगीन प्रतिभा का रेशमी सूत्र मिलाकर, एक सर्वथा नवीन रूप में कंथा-पट का सन्तान कर देना, कालिदास का अपना निजी कौशल है।

चरित्र-चित्रण में भी वे अत्यन्त निपुण हैं। उनके अधिकांश पात्रों का अपना निजी व्यक्तित्व है। भारतीय साहित्य में चरित्र-चित्रण, कोई स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है; अपितु रसनिष्पत्ति के आलम्बन रूप में ही उसका अन्तर्भाव हो जाता है।

कालिदास पर बीसों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। यह परिचयात्मक लेख तो केवल संस्कृत के कर्मठ विद्यार्थियों की प्रसुप्त इच्छा-शक्ति को प्रेरित करने के लिए है।

यह है कविकुलगुरु के व्यक्तित्व की एक मधुमयी झाँकी !

श्रीरघुवंशम्

संजीविन्या समेतम्

द्वितीयः सर्गः

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिवद्धवत्सां
यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥१॥

आशासु राशीभवदंगवल्लीभासैव दासीकृतदुग्धसिन्धुम् ।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि त्वाम् ॥१॥

अथेति ॥ अथ निशातिक्रमणानन्तरं। यशोधनः प्रजानामधिपः प्रजेश्वरः । प्रभाते प्रातःकाले। जायया सुदक्षिणया, प्रतिग्राहयित्र्या प्रतिग्राहिते स्वीकारिते, गन्धमाल्ये यया सा जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्या तां। (जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्) तथोक्ताम् । पीतं पानमस्यास्तीति पीतः । पीतवानित्यर्थः । 'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच् प्रत्ययः। 'पीता गावो, भुक्ता ब्राह्मणाः' इति महाभाष्यदर्शनात्। पीतः प्रतिबद्धो वत्सो यस्यास्तां (पीतप्रतिवद्धवत्सां) ऋषेर्वसिष्ठस्य । धेनुं नन्दिनीम्। वनाय वनं प्रति गन्तुं "क्रियार्थोपपद" इत्यादिना चतुर्थी। मुमोच मुक्तवान्। जायापदसामर्थ्यात्सुदक्षिणायाः पुत्रजननयोग्यत्वमनुसंधेयम्। तथाहि श्रुतिः 'पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरम्। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते। तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः' इति। यशोधन इत्यनेन पुत्रवत्ताकीर्तिलोभाद्राजानर्हे गोरक्षणे प्रवृत्त इति गम्यते। अस्मिन् सर्गे

वृत्तमुपजातिः—"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः" इति।

Prose Order :—अथ प्रभाते यशोधनः प्रजानामधिपः जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां पीतप्रतिबद्धवत्साम् ऋषेः धेनुं वनाय मुमोच।

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसु-
मपांसुलानां धुरि कीर्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी
श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥२॥ सूक्ति

सञ्जी०। तस्या इति। पांसवो दोषा आसां सन्तीति पांसुलाः स्वैरिण्यः। 'स्वैरिणी पांसुला" इत्यमरः। "सिध्मादिभ्यश्च" इति लच् प्रत्ययः। अपांसुलानां पतिव्रतानां। धुर्यग्रे। कीर्तनीया परिगणनीया। मनुष्येश्वरधर्मपत्नी। खुरन्यासैः पवित्राः पांसवो यस्य तम्। "रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना न द्वयो रजः" इत्यमरः। तस्याः धेनोर्मार्गम्। स्मृतिः मन्वादिवाक्यम्। श्रुतेर्वेदवाक्यस्य। अर्थम् अभिधेयम् इव। अन्वगच्छत् अनुसृतवती च। यथा स्मृतिः श्रुतिक्षुण्णमेवार्थमनुसरति तथा साऽपि गोखुरक्षुण्णमेव मार्गमनुससारेत्यर्थः। धर्मपत्नीत्यत्राश्वघासादिवत्तादर्थ्ये षष्ठीसमासः प्रकृतिविकाराभावात्। पांसुलपथप्रवृत्तावप्यपांसुलानामिति विरोधालंकारो ध्वन्यते।

Prose Order :—अपांसुलानां धुरि कीर्तनीया मनुष्येश्वरधर्मपत्नी खुरन्यासपवित्रपांसुं तस्याः मार्गं श्रुतेः अर्थं स्मृतिः इव अन्वगच्छत्।

निवर्त्य राजा दयितां दयालु-
स्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां
जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥३॥

सञ्जी०। निवर्त्येति। दयालुः कारुणिकः। "स्याद्दयालुः कारुणिकः" इत्यमरः। 'स्पृहिगृहि' इत्यादिना आलुच् प्रत्ययः। यशोभिः सुरभिर्मनोज्ञः। 'सुरभिः स्यान्मनोज्ञेऽपि' इति विश्वः। राजा तां दयितां निवर्त्य। सौरभेयीं कामधेनुसुतां नन्दिनीम्। धरन्तीति धराः पचाद्यच्। पयसां धराः पयोधराः

स्तनाः "स्त्रीस्तनाब्दौ पयोधरौ" इत्यमरः। अपयोधराः पयोधराः सम्पद्यमानाः पयोधरीभूताः। अभूततद्भावे च्विः। "कुगतिप्रादयः" इति समासः। पयोधरीभूताश्चत्वारः समुद्राः यस्यास्ताम्। "अनेकमन्यपदार्थे" इत्यनेकपदार्थग्रहणसामर्थ्यात्त्रिपदो बहुव्रीहिः। गोरूपधरामुर्वीमिव। जुगोप ररक्ष। भूरक्षणप्रयत्नेनैव ररक्षेति भावः। धेनुपक्षे पयसा दुग्धेनाधरीभूताश्चत्वारः समुद्राः यस्याः सा तथोक्ताम्। दुग्धतिरस्कृतसागरामित्यर्थः।

Prose Order :—दयालुः यशोभिः सुरभिः राजा तां दयितां निवर्त्य पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां सौरभेयीं पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां गोरूपधराम् उर्वीम् इव जुगोप।

व्रताय तेनानुचरेण धेनो-
न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा
स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ॥४॥ स्मृति

सञ्जी०। व्रतायेति। व्रताय धेनोरनुचरेण। न तु जीवनायेति भावः। तेन दिलीपेन। शेषः अवशिष्टोऽपि। अनुयायिवर्गः अनुचरवर्गः। न्यषेधि निवर्तितः। शेषत्वं सुदक्षिणापेक्षया। कथं तर्ह्यात्मरक्षणमत आह—न चेति। तस्य दिलीपस्य। शरीररक्षा। चान्यतः पुरुषान्तरात्। न। हि यस्मात्कारणात्। मनोः। प्रसूयत इति प्रसूतिः सन्ततिः। स्ववीर्यगुप्ता स्ववीर्येणैव रक्षिता। न हि स्वनिर्वाहकस्य परापेक्षेति भावः।

Prose Order :—व्रताय धेनोः अनुचरेण तेन शेषोऽपि अनुयायिवर्गः न्यषेधि। तस्य शरीररक्षा च अन्यतः न। हि मनोः प्रसूतिः स्ववीर्यगुप्ता (भवति)।

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां
कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः
सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥५॥

सञ्जी०। आस्वादवद्भिरिति। सम्राण्मण्डलेश्वरः। "येनेष्टं राजसूयेन मण्डलस्येश्वरश्च यः। शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राट्"

इत्यमरः। स राजा। आस्वादवद्भिः रसवद्भिः। स्वादयुक्तैरित्यर्थः। तृणानां कवलैर्ग्रासैः। 'ग्रासस्तु कवलः पुमान्' इत्यमरः। कण्डूयनैः खर्जनैः दंशानां वनमक्षिकाणां निवारणैः 'दंशस्तु वनमक्षिका' इत्यमरः। अव्याहतैरप्रतिहतैः स्वैरमतैः स्वच्छन्दगमनैश्च। तस्या धेन्वाः समाराधनतत्परः शुश्रूषासक्तोऽभूत्। तदेव परं प्रधानं यस्येति तत्परः "तत्परे प्रसितासक्तौ" इत्यमरः।

Prose Order:—स सम्राट् आस्वादवद्भिः तृणानां कवलैः कण्डूयनैः, दंशनिवारणैः; अव्याहतैः स्वैरगतैश्च तस्याः समाराधनतत्परः अभूत्।

स्थितः स्थितामुच्चलितः, प्रयातां
निषेदुषीमासनवन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥६॥

सञ्जी०। स्थित इति भूपतिस्तां गां स्थितां सती स्थितः सन् स्थितिरूर्ध्वावस्थानम्। प्रयातां प्रस्थितामुच्चलितः प्रस्थितः निषेदुषीं निषण्णाम्। उपविष्टामित्यर्थः। "भाषायां सदवसश्रुवः"—इति क्वसुप्रत्ययः। "उगितश्च" इति ङीप्। आसनवन्ध उपवेशने धीरः स्थितः उपविष्टः सन्नित्यर्थः। जलमाददानां पिवन्तीं जलाभिलाषी पिवन्नित्यर्थः। इत्थं छायेवान्वगच्छदनुसृतवान्।

Prose Order:—भूपतिस्तां स्थितां स्थितः (सन्), प्रयाताम् उच्चलितः (सन्), निषेदुषीम् आसनबन्धधीरः (सन्) जलम् आददानाम् जलाभिलाषी (सन्) छायेव अन्वगच्छत्।

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं
तेजोविशेषानुमितां दधानः।
आसीदनाविष्कृतदानराजि-
रन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः॥७॥

सञ्जी०। स इति। न्यस्तानि परिहृतानि चिह्नानि छत्रचामरादीनि यस्यास्तां तथाभूतां। (न्यस्तचिह्नामपि) तेजोविशेषेण प्रभावाति-

शयेन अनुमिताम्। सर्वथा राजैवायं भवेदित्यूहितां राजलक्ष्मीं दधानः स राजा। अनाविष्कृतदानराजिः वहिरप्रकटितमदरेखः। अन्तर्गता मदावस्था यस्य सः अन्तर्मदावस्थः। तथाभूतो द्विपेन्द्र इव आसीत्।

Prose Order :—न्यस्तचिह्नामपि तेजोविशेषानुमितां राजलक्ष्मीं दधानः सः अनाविष्कृतदानराजिः अन्तर्मदावस्थः द्विपेन्द्र इव आसीत्।

लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशै-
रधिज्यधन्वा विचचार दावम्।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनो-
र्वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्॥८॥

सञ्जी०। लतेति। लतानां वल्लीनां प्रतानैः कुटिलतन्तुभिरुद्ग्रथिता उन्नमय्य ग्रथिता ये केशास्तैः उपलक्षितः। 'इत्थंभूतलक्षणे' इति तृतीया। स राजा। अधिज्यम् आरोपितमौर्वीकं धनुर्यस्य सः अधिज्यधन्वा सन्। 'धनुषश्च' इत्यनङादेशः। मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् रक्षणव्याजात्। वन्यान् वने भवान् दुष्टसत्त्वान्। दुष्टजन्तून्। 'द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः। विनेष्यन् शिक्षयिष्यन् इव। दावं वनम्। 'वने च वनवह्नौ च दवो दाव इहेष्यते' इति यादवः। विचचार। वने चचारेत्यर्थः। 'देशकालाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्' इति दावस्य कर्मत्वम्।

Prose Order :—लताप्रतानोद्ग्रथितैः केशैः अधिज्यधन्वा सः मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् वन्यान् दुष्टसत्त्वान् विनेष्यन् इव दावं विचचार।

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य
पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य।
उदीरयामासुरिवोन्मदाना-
मालोकशब्दं वयसां विरावैः॥९॥

सञ्जी०। विसृष्टेति। विसृष्टाः पार्श्वानुचराः पार्श्ववर्तिनो जना येन तस्य। पाशभृता वरुणेन समस्य तुल्यस्य। 'प्रचेता वरुणः पाशी' इत्यमरः। अनुभावोऽनेन सूचितः। तस्य राज्ञः। पार्श्वयोः। उन्मदानाम् उत्कटमदानां वयसां खगानाम्। 'खगबाल्यादिनोर्वयः' इत्यमरः। विरावैः शब्दैः।

आलोकस्य शब्दं वाचकम् आलोकयेति शब्दम्। जयशब्दमित्यर्थः। 'आलोको जयशब्दः स्यात्' इति विश्वः। उदीरयामासुरिव अवदन्निव। इत्युत्प्रेक्षा।

Prose Order :—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य, पाशभृता समस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः उन्मदानाम् वयसाम् विरावैः आलोकशब्दम् उदीरयामासुरिव।

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं
तमर्च्यमारादभिवर्तमानम्।
अवाकिरन् बाललताः प्रसूनै-
राचारलाजैरिव पौरकन्याः ॥१०॥

सञ्जी०। मरुदिति। मरुत्प्रयुक्ता वायुना प्रेरिता बाललताः। आरात् समीपे अभिवर्तमानम्। 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः। मरुतो वायोः सखा मरुत्सखः अग्निः। स इवाभातीति मरुत्सखाभस्तम् तथोक्तम्। 'आतश्चोपसर्गे' इति कप्रत्ययः। अर्च्यं पूज्यं तं दिलीपं प्रसूनैः पुष्पैः। पौरकन्याः पौराश्च ताः कन्याः। आचारार्थैः लाजैः आचारलाजैरिव। अवाकिरन्। तस्योपरि निक्षिप्तवत्य इत्यर्थः। सखा हि सखायमागतमुपचरतीति भावः।

Prose Order :—मरुत्प्रयुक्ताः बाललताः मरुत्सखाभम् अर्च्यम् आरात् अभिवर्तमानम् तम् प्रसूनैः पौरकन्याः आचारलाजैः इव अवाकिरन्।

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभाव-
माख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां
प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ॥११॥

सञ्जी०। धनुरिति। धनुर्भृतोऽप्यस्य राज्ञः एतेन भयसम्भावना दर्शिता। तथापि विशङ्कैः निर्भीकैः। अन्तःकरणैः। कर्तृभिः। दयया कृपारसेन, आर्द्रीभावोऽभिप्रायो यस्य तत् दयार्द्रभावं तत् आख्यातम्। दयार्द्रभावमेतदित्याख्यातमित्यर्थः। 'भावः सत्त्वस्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु' इत्यमरः। तथाविधं वपुः। विलोकयन्त्यः हरिण्यः। अक्ष्णां प्रकामविस्तारस्य अत्यन्तविशालतायाः फलम् आपुः। 'विमलं कलुषी-

भवच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं च' इति न्यायेन स्वान्तःकरण-वृत्तिप्रामाण्यादेव विश्वस्वं ददृशुरित्यर्थः।

Prose Order :—धनुर्भृतः अपि अस्य विशङ्कैः अन्तःकरणैः (सद्भिः) दयार्द्रभावम् (इति) आख्यातम् वपुः विलोकयन्त्यः हरिण्यः अक्ष्णां प्रकामविस्तारफलम् आपुः।

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः
कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चै-
रुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥१२॥

सञ्जी०। स इति। स दिलीपो मारुतपूर्णरन्ध्रैः। अतएव कूजद्भिः स्वनद्भिः। कीचकैः वेणुविशेषैः। 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः। वंशः सुषिरवाद्यविशेषः। 'वंशादिकं तु सुषिरम्' इत्यमरः। आपादितं सम्पादितं। वंशस्य कृत्यं कार्यं यस्मिन् कर्मणि तत्तथा। कुञ्जेषु लतागृहेषु। 'निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीवे लतादिपिहितोदरे' इत्यमरः। वनदेवातभिरुद्गीयमानम् उच्चैर्गीयमानं स्वं यशः शुश्राव श्रुतवान्।

Prose Order :—सः मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिः कीचकैः आपादितवंशकृत्यम् कुञ्जेषु वनदेवताभिः उच्चैः उद्गीयमानं स्वं यशः शुश्राव।

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणा-
मनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्र-
माचारपूतं पवनः सिषेवे ॥१३॥

सञ्जी०। पृक्तेति। गिरिषु निर्झराणां वारिप्रवाहाणाम् 'वारिप्रवाहो निर्झरो झरः' इत्यमरः। तुषारैः। सीकरैः। 'तुषारौ हिमसीकरौ' इति शाश्वतः। पृक्तः संपृक्तः। अनोकहानां वृक्षाणामाकम्पितानि ईषत्कम्पितानि पुष्पाणि, तेषां यो गन्धः, सोऽस्यास्तीति आकम्पितपुष्पगन्धी। ईषत्कम्पितपुष्पगन्धवान्। एवं शीतो मन्दः सुरभिः पवनः वायुः अनातपत्रं व्रतार्थं परिहृतच्छत्रम्। अतएव आतपक्लान्तम्। आचारेण पूतम् आचारपूतं शुद्धं। तं नृपं सिषेवे। आचारपूतत्वात् स राजा जगत्पावनस्यापि सेव्य आसीदिति भावः।

Prose Order :—गिरिनिर्झराणाम् तुषारैः पृक्तः अनोकहाकम्पित-पुष्पगन्धी पवनः, आतपक्लान्तम्, अनातपत्रम्, आचारपूतम् तम् सिषेवे।

शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्नि-
रासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको ववाधे
तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने ॥१४॥

सञ्जी०। शशामेति। गोप्तरि तस्मिन् राज्ञि। वनं गाहमाने प्रविशति सति। वृष्ट्या विनापि। दवाग्निः वनाग्निः। 'दवदावौ वनानले' इति हैमः। शशाम। फलानां पुष्पाणां च वृद्धिः फलपुष्पवृद्धिः। विशेष्यत इति विशेषा अतिशयिता। आसीत् कर्मार्थे घञ् प्रत्ययः। सत्त्वेषु मध्ये। 'यतश्च निर्धारणम्' इति सप्तमी। अधिकः प्रबलो व्याघ्रादिः। ऊनं दुर्बलं हरिणादिकं न ववाधे।

Prose Order :—गोप्तरि तस्मिन् वनम् गाहमाने वृष्ट्या विनापि दवाग्निः शशाम, फलपुष्पवृद्धिः विशेषा आसीत्। सत्त्वेषु अधिकः ऊनं न ववाधे।

सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि
कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा
प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥१५॥

सञ्जी०। सञ्चारेति। पल्लवस्य रागो वर्णः पल्लवरागः। "रागोऽनुरक्तौ मात्सर्ये क्लेशादौ लोहितादिषु" इति शाश्वतः। स इव ताम्रा पल्लवरागताम्रा। पतङ्गस्य सूर्यस्य प्रभा कान्तिः। 'पतङ्गः पक्षिसूर्ययोः' इति शाश्वतः। मुनेर्धेनुश्च। दिगन्तराणि दिशामवकाशान्। 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये' इत्यमरः। सञ्चारेण पूतानि शुद्धानि (सञ्चारपूतानि) कृत्वा दिनान्ते सायंकाले। निलयाय अस्तमयाय। धेनुपक्षे आलयाय च गन्तुं प्रचक्रमे।

Prose Order :—पल्लवरागताम्रा पतङ्गस्य प्रभा मुनेश्च धेनुः दिगन्तराणि सञ्चारपूतानि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुं प्रचक्रमे।

निषण्णां धेनुमन्वास्यानूपविश्य क्रमेण सुप्तामन्वगनन्तरं संविवेश सुष्वाप। प्रातः सुप्तोत्थितामनूदतिष्ठदुत्थितवान्। अत्रानुशब्देन धेनु-राजव्यापारयोः पौर्वापर्यमुच्यते क्रमशब्देन धेनुव्यापाराणामेवेत्यपौनरुक्त्यम्। "कर्म-प्रवचनीययुक्ते द्वितीया" इति द्वितीया।

Prose Order :—गृहिणीसहायः गोप्ता अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपां तां (धेनुम्) अन्वास्य क्रमेण सुप्ताम् अनुसंविवेश, प्रातः सुप्तोत्थिताम् अनु उदतिष्ठत्।

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं
समं महिष्या महनीयकीर्तेः।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य
दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥२५॥

सञ्जी०। इत्थमनेन प्रकारेण प्रजार्थं संतानाय महिष्या सममभिषिक्तपत्न्या सह 'कृताभिषेका महिषी' इत्यमरः। व्रतं धारयतः, महनीया पूज्या कीर्तिर्यस्य तस्य, दीनानामुद्धरणं दैन्यविमोचनं तत्रोचितस्य परिचितस्य तस्य नृपस्य त्रयो गुणा आवृत्तयो येषां तानि त्रिगुणानि त्रिरावृत्तानि सप्त-दिनान्येकविंशतिदिनानि व्यतीयुः।

Prose Order:—इत्थं प्रजार्थं महिष्या समं व्रतं धारयतः मह-नीयकीर्तेः दीनोद्धरणोचितस्य तस्य सप्त त्रिगुणानि दिनानि व्यतीयुः।

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं
जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः।
गंगाप्रपातान्तविरूढशष्पं
गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥२६॥

सञ्जी०। अन्येद्युरन्यस्मिन्दिने द्वाविंशे दिने। "सद्यः परुत्परा०" इत्यादिना निपातनादव्ययम् 'अद्यात्राह्न्यथ पूर्वेऽह्नीत्यादौ पूर्वोत्तरापरात्। तथाधरान्यान्यतरेतरात्पूर्वेद्युरादयः' इत्यमरः। मुनिहोमधेनुः आत्मा-नुचरस्य भावमभिप्रायं दृढभक्तित्वम् 'भावोऽभिप्राय आशयः' इति यादवः। जिज्ञासमाना ज्ञातुमिच्छन्ती। "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः" इत्यात्मनेपदे शानच्। प्रपतत्यस्मिन्निति प्रपातः पतनप्रदेशः गङ्गायाः प्रपातस्तस्यान्ते समीपे

विरुढानि जातानि शष्पाणि बालतृणानि यस्मिस्तत्। 'शष्पं बालतृणं घासः' इत्यमरः। गौरीगुरोः पार्वतीपितुर्गह्वरं गुहमाविवेश।

Prose Order:—अन्येद्युः मुनिहोमधेनुः आत्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोः गह्वरम् आविवेश।

सा दुष्प्रधर्षा मनसापि हिंस्रै-
रित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन ।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण
प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष ॥२७॥

सञ्जी०। सा धेनुर्हिंस्रव्याघ्रादिभिर्मनसापि दुष्प्रधर्षा दुर्धर्षेति हेतोरद्रिशोभायां प्रहितेक्षणेन दत्तदृष्टिना नृपेणालक्षितमभ्युत्पतनमाभिमुख्येनोत्पतनं यस्य स सिंहस्तां धेनुं प्रसह्य हठात्। 'प्रसह्य तु हठार्थकम्' इत्यमरः। चकर्ष। किलेत्यलीके।

Prose Order :—सा धेनुः हिंस्रैः मनसापि दुष्प्रधर्षा इति अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन नृपेण अलक्षिताभ्युत्पतनः सिंहः तां किल चकर्ष।

तदीयमाक्रन्दितमार्तसाधो-
र्गुहानिवद्धप्रतिशव्ददीर्घम् ।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां
निवर्तयामास नृपस्य दृष्टिम् ॥२८॥

सञ्जी०। गुहानिवद्धेन प्रतिशब्देन (प्रतिध्वनिना) दीर्घम्। तस्या इदं तदीयम्। आक्रन्दितमार्तघोषणम्। आर्तेष्वापन्नेषु साधोर्हितकारिणो नृपस्य नगेन्द्रसक्तां दृष्टिम्। रश्मिषु प्रग्रहेषु 'किरणप्रग्रहौ रश्मी' इत्यमरः. आदायेव गृहीत्वेव निवर्तयामास।

Prose Order:—गुहानिवद्धप्रतिशव्ददीर्घम् तदीयम् आक्रन्दितम् आर्तसाधोः नृपस्य नगेन्द्रसक्तां दृष्टिं रश्मिषु आदाय इव निवर्तयामास।

स पाटलायां गवि तस्थिवांसं
धनुर्धरः केसरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां
लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥२९॥

सञ्जी०। धनुर्धरः स नृपः पाटलायां रक्तवर्णायां गवि तस्थिवांसं स्थितम् 'क्वसुश्च' इति क्वसु प्रत्ययः। केसरिणं सिंहम्। सानुमतोऽद्रेः धातोर्गैरिकस्य विकारो धातुमयी- तस्यामधित्यकायामूर्ध्वभूमौ 'उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका' इत्यमरः। "उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः" इति त्यकन्प्रत्ययः। प्रफुल्लो विकसितस्तम्। "फुल्ल विकसने" इति धातोः पचाद्यच्। प्रफुल्लम् इति तकारपाठे त्रिफला विशरणे इति धातोः कर्त्तरि क्तः "उत्परस्यातः" इत्युकारादेशः। लोध्राख्यं ददर्श।

Prose Order :—धनुर्धरः सः पाटलायां गवि तस्थिवांसं केसरिणं सानुमतः धातुमय्याम् अधित्यकायाम् प्रफुल्लं लोध्रद्रुमम् इव ददर्श।

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी
वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा-
दुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः ॥३०॥

सञ्जी०। ततः सिंहदर्शनानन्तरं मृगेन्द्रगामी सिंहगामी। शरणं रक्षणम् 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। 'शरणं रक्षणे गृहे' इति यादवः। शरणे साधुः शरण्यः "तत्र साधुः" इति यत्प्रत्ययः। प्रसभेन बलात्कारेणोद्धृता अरयो येन स नृपतिः राजा जाताभिषङ्गो जातपराभवः सन्। 'अभिषङ्गः पराभवः' इत्यमरः। वध्यस्य वधार्हस्य। "दण्डादिभ्यो यः" इति यप्रत्ययः। मृगेन्द्रस्य वधाय निषङ्गात्तूणीरात्। 'तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः' इत्यमरः। शरमुद्धर्तुमैच्छत्।

Prose Order :—ततः मृगेन्द्रगामी शरण्यः प्रसभोद्धृतारिः जाताभिषङ्गः नृपतिः वध्यस्य मृगेन्द्रस्य वधाय निषङ्गात् शरम् उद्धर्तुम् ऐच्छत्।

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तु-
र्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुङ्ख एव
चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ॥३१॥

सञ्जी०। प्रहर्तुस्तस्य वामेतरो दक्षिणः करः नखप्रभाभिर्भूषितानि

विच्छुरितानि कङ्कस्य पक्षिविशेषस्य पत्राणि यस्य तस्मिन्। 'कंकः पक्षिविशेषः स्याद् गुप्ताकारे युधिष्टिरे' इति विश्वः। 'कङ्कस्तु कर्कटः' इति यादवः। सायकस्य पुङ्ख एव कर्तर्याख्ये मूलप्रदेशे। 'कर्तरी पुङ्खे' इति यादवः। सक्ताङ्गुलिः सन् चित्रार्पितारम्भश्चित्रलिखितशरोद्धरणोद्योग इव अवतस्थे।

Prose Order :—प्रहर्तुः तस्य वामेतरः करः नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे सायकपुंखे एव सक्ताङ्गुलिः (सन्) चित्रार्पितारम्भ इव अवतस्थे।

वाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्यु-
रभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः ।
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्त-
र्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः ॥३२॥

सञ्जी०। वाहोः प्रतिष्टम्भेन प्रतिवन्धेन 'प्रतिवन्धः प्रतिष्टम्भः' इत्यमरः। विवृद्धमन्युः प्रवृद्धरोषो राजा मन्त्रौषधिभ्यां रुद्धवीर्यः प्रतिवद्धशक्तिर्भोगी सर्पः। 'भोगी राजभुजङ्गयोः' इति शाश्वतः। अभ्यर्णमन्तिकम् 'उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा अप्यमितोऽव्ययम्' इत्यमरः। आगस्कृतमपराधकारिणमस्पृशद्भिः स्वतेजोभिरन्तरदह्यत 'अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि' इति यादवः।

Prose Order :—वाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः राजा अभ्यर्णम् आगस्कृतम् अस्पृशद्भिः स्वतेजोभिः मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः भोगी इव अन्तः अदह्यत।

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनु-
र्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्।
विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौ
सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः ॥३३॥

सञ्जी०। निगृहीता पीडिता धेनुर्येन स सिंहः। आर्याणां सतां गृह्यं पक्ष्यम्। 'पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च' इति क्यप्। मनुवंशस्य केतुं चिह्नं केतुवद्व्यावर्तकम्। सिंह इवोरुसत्त्वो महावलस्तम्। आत्मनो वृत्तौ वाहुस्तम्भरूपे व्यापारेऽभूतपूर्वत्वाद्विस्मितम्। कर्तरि क्तः। तं दिलीपं

मनुष्यवाचा करणेन पुनर्विस्माययन्विस्मयमाश्चर्यं प्रापयन्निजगाद। 'स्मिङ ईषद्धसने' इति धातोर्णिनि वृद्धावायादेशे शतृप्रत्यये च सति विस्माययन्निति रूपं सिद्धम्। विस्मापयन् इति पाठे पुगागममात्रं वक्तव्यम्। तच्च "नित्यं स्मयतेः" इति हेतुभयविवक्षायामेवेति "भीस्म्योर्हेतुभये" इत्यात्मनेपदे विस्मापयमान इति स्यात्। तस्मान्मनुष्यवाचा विस्माययन्निति रूपं सिद्धम्। करणविवक्षायां न कश्चिद्दोषः।

Prose Order :—निगृहीतधेनुः सिंहः आर्यगृह्यम् मनुवंशकेतुम् सिंहोरुसत्त्वम् आत्मवृत्तौ विस्मितम् तम् मनुष्यवाचा विस्माययन् निजगाद।

अलं महीपाल तव श्रमेण
प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य॥३४॥

सञ्जी०। हे महीपाल, तव श्रमेणालम्। साध्याभावाच्छ्रमो न कर्त्तव्य इत्यर्थः। अत्र गम्यमानसाधनक्रियापेक्षयाश्रमस्य करणत्वात्तृतीया। उक्तं च न्यासोद्योते—न केवलं श्रूयमाणैव क्रिया निमित्तं करणभावस्य। अपि तर्हि गम्यमानापि इति। 'अलं भूषणपर्याप्तशक्तिवारणवाचकम्' इत्यमरः। इतोऽस्मिन्मयि। सार्वविभक्तिकस्तसिः। प्रयुक्तमप्यस्त्रं वृथा स्यात्। तथा हि पादपोन्मूलने शक्तिर्यस्य तत्तथोक्तं मारुतस्य रंहो वेगः शिलोच्चये पर्वते न मूर्च्छति न प्रसरति।

Prose Order :—महीपाल तव श्रमेण अलम् इति प्रयुक्तम् अपि अस्त्रम् वृथा स्यात् हि पादपोन्मूलनशक्ति मारुतस्य रंहः शिलोच्चये न मूर्च्छति।

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः
पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।
अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः
कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्॥३५॥

सञ्जी०। कैलाश इव गौरः शुभ्रस्तन्। 'चामीकरं च शुभ्रं च गौरमाहुर्मनीषिणः' इति शाश्वतः। वृषं वृषभमारुरुक्षोरारोढुमिच्छोः।

स्वस्योपरि पदं निक्षिप्य वृषमारोहतीत्यर्थः। अष्टौ मूर्तयो यस्य स तस्याष्टमूर्तेः शिवस्य। पादार्पणं पादन्यासस्तदेवानुग्रहः प्रसादस्तेन पूतं पृष्ठं यस्य तं तथोक्तं निकुम्भमित्रं कुम्भोदरं नाम किंकरं मामवेहि विद्धि। 'पृथिवी सलिलं तेजो वायुराकाशमेव च। सूर्याचन्द्रमसौ सोमयाजी चेत्यष्टमूर्त्तयः।' इति यादवः।

Prose Order :—कैलासगौरम् वृषम् आरुरुक्षोः अष्टमूर्तेः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् निकुम्भमित्रम् कुम्भोदरम् नाम किंकरम् माम् अवेहि।

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं
पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां
स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥३६॥

सञ्जी०। पुरोऽग्रतोऽमुं देवदारुं पश्यसि इति काकुः। असौ देवदारुः वृषभो ध्वजे यस्य स तेन शिवेन पुत्रीकृतः पुत्रत्वेन स्वीकृतः। अभूततद्भावे च्विः। यो देवदारुः स्कन्दस्य मातुर्गौर्या हेम्नः कुम्भः एव स्तनः तस्मान्निःसृतानां पयसामम्बूनां रसज्ञः स्वादज्ञः, स्कन्धपक्षे हेमकुम्भः इव स्तन इति विग्रहः। पयसां क्षीराणाम्। 'पयः क्षीरं पयोऽम्बु च' इत्यमरः। स्कन्दसमानप्रेमास्पदमिति भावः।

Prose Order :—(यम्) अमुम् देवदारुं पुनः पश्यसि असौ वृषभध्वजेन पुत्रीकृतः, यः (असौ वृक्षः) स्कन्दस्य मातुः हेमकुम्भस्तननिःसृतानाम् पयसाम् रसज्ञः।

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्-
वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच
सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः ॥३७॥

सञ्जी०। कदाचित्कटं कपोलं कण्डूयमानेन घर्षयता। "कण्ड्वादिभ्यो यक्" इति यक् ततः शानच्। वन्यद्विपेनास्य देवदारोस्त्वगुन्मथिता। अथाद्रेस्तनया गौरी असुरास्त्रैरालीढं क्षतम्। सेनां नयतीति सेनानीः

स्कन्दः। 'पार्वतीनन्दनः स्कन्दः सेनानीः' इत्यमरः। "सत्सूद्विष" इत्यादिना क्विप्। तमिव एनं देवदारुं शुशोच।

Prose Order :—कदाचित् कटम् कण्डूयमानेन वन्यद्विपेन अस्य त्वक् उन्मथिता, अथ अद्रेस्तनया असुरास्त्रैः आलीढम् सेनान्यम् इव एनम् शुशोच।

तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां
त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ।
व्यापारितः शूलभृता विधाय
सिंहत्वमङ्कागतसत्त्ववृत्ति ॥३८॥

सञ्जी०। तदा तत्कालः प्रभृतिरादिर्यस्मिन्कर्मणि तत्तथा तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थं भयार्थं शूलभृता शिवेन अङ्कं समीपमागताः प्राप्ताः सत्त्वाः प्राणिनो वृत्तिर्यस्मिंस्तत् 'अङ्कः समीप उत्सङ्गे चिह्नस्थानापराधयोः' इति केशवः। सिंहत्वं विधाय अस्मिन्नद्रिकुक्षौ गुहायामहं व्यापारितो नियुक्तः।

Prose Order :—तदाप्रभृति एव वनद्विपानाम् त्रासार्थम् शूलभृता अङ्कागतसत्त्ववृत्ति सिंहत्वम् विधाय अस्मिन् अद्रिकुक्षौ अहम् व्यापारितः।

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै
प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।
उपस्थिता शोणितपारणा मे
सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव ॥३९॥

सञ्जी०। परमेश्वरेण प्रदिष्टो निर्दिष्टः कालो भोजनवेला यस्याः सोपस्थिता प्राप्तैषा गोरूपा शोणितपारणा रुधिरस्य व्रतान्तभोजनं सुरद्विषो राहोः चन्द्रमसः इयं चान्द्रमसी सुधेव क्षुधितस्य बुभुक्षितस्य तस्याङ्कागतसत्त्ववृत्तेर्मे मम सिंहस्य तृप्त्यै अलं पर्याप्ता। "नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च" इत्यनेन चतुर्थी।

Prose Order :—परमेश्वरेण प्रदिष्टकाला (सती) उपस्थिता एषा शोणितपारणा, चान्द्रमसी सुधा सुरद्विषः इव, क्षुधितस्य तस्य मे तृप्त्यै अलम्।

स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां
गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं
न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥४०॥

सञ्जी०। स एवमुपायशून्यस्त्वं लज्जां विहाय निवर्तस्व। भवांस्त्वं गुरोर्दर्शिता प्रकाशिता शिष्यस्य कर्तव्या भक्तिर्येन स तथोक्तोऽस्ति। ननु गुरुधनं विनाश्य कथं तत्समीपं गच्छेयमत आह—शस्त्रेणेति। यद्रक्ष्यं धनं शस्त्रेणायुधेन। 'शस्त्रमायुधलोहयोः' इत्यमरः। अशक्या रक्षा यस्य तदशक्यरक्षम्। रक्षितुमशक्यमित्यर्थः। तद्रक्ष्यं नष्टमपि शस्त्रभृतां यशो न क्षिणोति न हिनस्ति अशक्यार्थेष्वप्रतिविधानं न दोषायेति भावः।

Prose Order :—स त्वम् लज्जाम् विहाय निवर्तस्व, भवान् गुरोः दर्शितशिष्यभक्तिः, यत् रक्ष्यम् शस्त्रेण अशक्यरक्षम् तत् शस्त्रभृताम् यशः न क्षिणोति।

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो
मृगाधिराजस्य वचो निशम्य।
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावा-
दात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार ॥४१॥

सञ्जी०। पुरुषाणामधिराजो नृपः इति प्रगल्भं मृगाधिराजस्य वचो निशम्य श्रुत्वा गिरिशस्येश्वरस्य प्रभावात्प्रत्याहतास्त्रः कुण्ठितास्त्रः सन्नात्मनि विषयेऽवज्ञामपमानं शिथिलीचकार तत्याजेत्यर्थः। अवज्ञातोऽहमिति निर्वेदं न प्रापेत्यर्थः। समानेषु हि क्षत्रियाणामभिमानः, न सर्वेश्वरं प्रतीति भावः।

Prose Order :—पुरुषाधिराजः मृगाधिराजस्य इति प्रगल्भम् वचः निशम्य गिरिशप्रभावात् प्रत्याहतास्त्रः आत्मनि अवज्ञां शिथिलीचकार।

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे
तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः।
जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन
वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः ॥४२॥

सञ्जी०। स एव पूर्वः प्रथमो भङ्गः प्रतिबन्धो यस्य तस्मिंस्तत्पूर्वभङ्गे इषुप्रयोगे। वितथप्रयत्नो विफलप्रयासः अतएव वज्रं कुलिशं मुमुक्षन्मोक्तुमिच्छन्। अम्बकं लोचनम् 'दृग्दृष्टिनेत्रलोचनचक्षुर्नयनाम्बकेक्षणाक्षीणि' इति हलायुधः। त्रीण्यम्बकानि यस्य स त्र्यम्बको हरः तस्य वीक्षणेन जडीकृतो निष्पन्दीकृतः वज्रं पाणौ यस्य स वज्रपाणिरिन्द्रः। 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम्' इति पाणेः सप्तम्यन्तस्योत्तरनिपातः स इव स्थितो नृप एनं सिंहं प्रत्यब्रवीच्च 'बाहुं सवज्रं शक्रस्यास्तम्भयत्प्रभुः' इति महाभारते।

Prose Order :—तत्पूर्वभङ्गे इषुप्रयोगे वितथप्रयत्नः वज्रम् मुमुक्षन् त्र्यम्बकवीक्षणेन जडीकृतः वज्रपाणिरिव (स्थितः स राजा) एनम् (सिंहम्) प्रत्यब्रवीत्।

संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र कामं
हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः।
अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद
सर्वं भवान्भावमतोऽभिधास्ये ॥४३॥

सञ्जी०। हे मृगेन्द्र! संरुद्धचेष्टस्य प्रतिबद्धव्यापारस्य मम तद्वचो वाक्यं कामं हास्यं परिहसनीयम् यद्वचः 'स त्वं मदीयेन' इत्यादिकमहं विवक्षुर्वक्तुमिच्छुरस्मि। तर्हि तूष्णीं स्थीयतामित्याशङ्क्येश्वरकिंकरत्वात्सर्वज्ञं त्वां प्रति न हास्यमित्याह—अन्तरिति। हि यतो भवान् प्राणभृतामन्तर्गतं हृद्गतं वाग्वृत्त्या बहिरप्रकाशितमेव सर्वं भावं वेद वेत्ति "विदो लटो वा" इति णलादेशः। अतोऽहमभिधास्ये वक्ष्यामि। वच इति प्रकृतं कर्म संबध्यते। अन्ये त्वीदृग्वचनमाकर्ण्यासंभावितार्थमेतदित्युपहसन्ति। अतस्तु मौनमेव भूषणम्। त्वं तु वाङ्मनसयोरेकविध एवायमिपि जानासि अतोऽभिधास्ये यद्वचोऽहं विवक्षुरित्यर्थः।

Prose Order :—हे मृगेन्द्र! संरुद्धचेष्टस्य (मम) तत् वचः कामम् हास्यम् (अस्ति) यत् अहम् विवक्षुः, हि भवान् प्राणभृताम् अन्तर्गतम् सर्वम् भावम् वेद अतः अभिधास्ये।

मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानां
सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः ।
गुरोरपीदं धनमाहिताग्ने-
र्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम् ॥४४॥

सञ्जी०। प्रत्यवहारः प्रलयः। स्थावराणां तरुशैलादीनां जङ्गमानां मनुष्यादीनां सर्गस्थितिप्रत्यवहारेषु हेतुः स ईश्वरो मे मम मान्यः पूज्यः। अलङ्घ्यशासन इत्यर्थः। शासनं च "सिंहत्वमङ्कागतसत्त्ववृत्ति' इत्युक्तरूपम्। तर्हि विसृज्य गम्यताम्। नेत्याह—गुरोरपीति। पुरस्तादग्रे नश्यदिदमाहिताग्नेर्गुरोर्धनमपि गोरूपमनुपेक्षणीयम्। आहिताग्नेरिति विशेषणेनानुपेक्षाकारणं हविःसाधनत्वं सूचयति।

Prose Order :—स्थावरजङ्गमानाम् सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः स मे मान्यः। पुरस्तात् नश्यत् इदम् आहिताग्नेः गुरोः धनम् अपि अनुपेक्षणीयम्।

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं
देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकवालवत्सा
विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः ॥४५॥

सञ्जी०। सोऽङ्कागतसत्त्ववृत्तिस्त्वं मदीयेन देहेन वृत्तिं जीवनं निर्वर्तयितुं संपादयितुं प्रसीद। दिनावसाने उत्सुको माता समागमिष्यतीत्युकण्ठितो वालवत्सो यस्याः सा महर्षेरियं धेनुर्विसृज्यताम्।

Prose Order :—स त्वम् मदीयेन देहेन शरीरवृत्तिम् निर्वर्तयितुम् प्रसीद, दिनावसानोत्सुकवालवत्सा इयम् महर्षेः धेनुः विसृज्यताम्।

अथान्धकारं गिरिगह्वराणां
दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन्।
भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती
किंचिद्विहस्यार्थपतिं वभाषे ॥४६॥

सञ्जी०। अथ भूतेश्वरस्य पार्श्ववर्त्यनुचरः स सिंहो गिरिगह्वराणां गुहानाम्। 'देवखातविले गुहा। गह्वरम्' इत्यमरः। अंधकारं ध्वान्तं

दंष्ट्रामयूखैः शकलानि खण्डानि कुर्वन्। निरस्यन्नित्यर्थः। किंचिद्विहस्यार्थपतिं नृपं भूयो बभाषे। हासकारणम् 'अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्' इतिवक्ष्यमाणं द्रष्टव्यम्।

Prose Order :—अथ भूतेश्वरपार्श्ववर्ती स गिरिगह्वराणाम् अन्धकारम् दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन् किंचित् विहस्य अर्थपतिम् भूयः बभाषे।

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं
नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्॥४७॥

सञ्जी०। एकातपत्रमेकच्छत्रं जगतः प्रभुत्वं स्वामित्वम्। नवं वयो यौवनम्। इदं कान्तं रम्यं वपुश्च इत्येवं बहु अल्पस्य हेतोरल्पेन कारणेन। अल्पफलायेत्यर्थः। 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी। हातुं त्यक्तुमिच्छंस्त्वं विचारे कार्याकार्यविमर्शे मूढो मूर्खो मे मम प्रतिभासि।

Prose Order :—एकातपत्रम् जगतः प्रभुत्वम् नवम् वयः इदम् कान्तम् वपुश्च, अल्पस्य हेतोः बहु हातुमिच्छन् त्वम् विचारमूढः मे प्रतिभासि।

भूतानुकम्पा तव चेदियं गौ-
रेका भवेत्स्वस्तिमती त्वदन्ते।
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः
प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि॥४८॥

सञ्जी०। तव भूतेष्वनुकम्पा कृपा चेत्। 'कृपा दयानुकम्पा स्यात्' इत्यमरः। कृपैव वर्तते चेदित्यर्थः। तर्हि त्वदन्ते तव नाशे सतीयमेका गौः स्वस्ति क्षेममस्या अस्तीति स्वस्तिमती भवेत्। जीवेदित्यर्थः। 'स्वस्त्याशीः क्षेमपुण्यादौ' इत्यमरः। हे प्रजानाथ, जीवन्पुनः पितेव प्रजा उपप्लवेभ्यो विघ्नेभ्यः शश्वत्सदा 'पुनः सदार्थयोः शश्वत्' इत्यमरः। पासि रक्षसि स्वप्राणव्ययेनैकधेनुरक्षणाद्वरं जीवतेनैव शश्वदखिलजगत्त्राणमित्यर्थः।

Prose Order :—तव भूतानुकम्पा चेत्, इयम् एका गौः त्वदन्ते स्वस्तिमती भवेत्। हे प्रजानाथ! जीवन् पुनः पिता इव प्रजाः उपप्लवेभ्यः शश्वत् पासि।

अथैकधेनोरपराधचण्डाद्
गुरोः कृशानुप्रतिमाद्बिभेषि।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं
गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोघ्नीः ॥४९॥

सञ्जी०। अथेति पक्षान्तरे। अथवा एकैव धेनुर्यस्य तस्मात्। अयं कोपकारणोपन्यास इति ज्ञेयम्। अत एवापराधे गवोपेक्षालक्षणे सति चण्डादतिकोपनात्। 'चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः' इत्यमरः। अतएव कृशानुः प्रतिमोपमा यस्य तस्मादग्निकल्पाद्गुरोर्बिभेषि। इति काकुः। "भीत्रार्थानां भयहेतुः" इत्यपादानात्पञ्चमी। अल्पवित्तस्य धनहानिरतिदुःसहेति भावः। अस्य गुरोर्मन्युः क्रोधः। 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः। घटा इवोधांसि यासां ताः घटोघ्नीः 'ऊधसोऽनङ्' इत्यनङादेशः। "बहुव्रीहेरूधसो ङीष्" इति ङीष्। कोटिशो गाः स्पर्शयता प्रतिपादयता। 'विश्राणनं वितरणं स्पर्शनं प्रतिपादनम्' इत्यमरः। भवता। विनेतुमपनेतुं शक्यः।

Prose Order :—अथ एकधेनोः अपराधचण्डात् कृशानुप्रतिमात् गुरोः बिभेषि, अस्य मन्युः घटोघ्नीः कोटिशः गाः स्पर्शयता भवता विनेतुम् शक्यः।

तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणाम्
भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम्।
महीतलस्पर्शनमात्रभिन्न-
मृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ॥५०॥

सञ्जी०। तत्तस्मात्कारणात्कल्याणपरम्पराणां भोक्तारम्। कर्मणि षष्ठी। ऊर्जो बलमस्यास्तीत्यूर्जस्वलम्। "ज्योत्स्नातमिस्रा०" इत्यादिना वलच्प्रत्ययान्तो निपातः। आत्मदेहं रक्ष। ननु गामुपेक्ष्यात्मदेहरक्षणे स्वर्गहानिः स्यात्। नेत्याह—महीतलेति। ऋद्धं समृद्धं राज्यं महीतलस्पर्श-

नमात्रेण भूतलसम्बन्धमात्रेण भिन्नमैन्द्रसम्बन्धि पदं स्थानमाहुः स्वर्गान्न भिद्यत इत्यर्थः।

Prose Order :—तत् कल्याणपरंपराणाम् भोक्तारम् ऊर्जस्वलम् आत्मदेहम् रक्ष, हि ऋद्धं राज्यम् महीतलस्पर्शमात्रभिन्नम् ऐन्द्रं पदम् आहुः।

एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे
प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन।
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः
प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव ॥५१॥

uncertain

सञ्जी०। मृगेन्द्रे एतावदुक्त्वा विरते सति गुहागतेनास्य सिंहस्य प्रतिस्वनेन शिलोच्चयः शैलोऽपि प्रीत्या तमेवार्थं क्षितिपालमुच्चैरभाषतेव इत्युत्प्रेक्षा। भाषिरयं ब्रुविसमानार्थत्वाद्द्विकर्मकः। ब्रुविस्तु द्विकर्मकेषु पठितः। तदुक्तम्—'दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिञामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ। ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्तितमाचरितं कविना' इति।

Prose Order :—मृगेन्द्रे एतावत् उक्त्वा विरते (सति) शिलोच्चयः अपि अस्य गुहागतेन प्रतिस्वनेन उच्चैः क्षितिपालम् प्रीत्या तम् एव अर्थम् अभाषत इव।

निशम्य देवानुचरस्य वाचम्
मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच।
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या
निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः ॥५२॥

सञ्जी०। देवानुचरस्येश्वरकिंकरस्य सिंहस्य वाचं निशम्य मनुष्यदेवो राजा पुनरप्युवाच। किंभूतः सन्। तेन सिंहेन यदध्यासितं व्याक्रमणम्। नपुंसके भावे क्तः। तेन कातरे अक्षिणी यस्यास्तया। "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्" इति षच्। "षिद्गौरादिभ्यश्च" इति ङीप्। किंवा वक्ष्यतीति भीत्यैव स्थितयेत्यर्थः धेन्वा निरीक्ष्यमाणः। अतएव सुतरां दयालुः सन् सुतरामित्यत्र "द्विवचनविभज्य०" इत्यादिना सुशब्दात्तरप् "किमेत्तिङ-

व्ययवादाम्वद्रव्यप्रकर्षे" इत्यनेनाम्प्रत्ययः। "तद्धितश्चासर्वविभक्तिः" इत्यव्ययसंज्ञा।

Prose Order :—देवानुचरस्य वाचम् निशम्य तदध्यासित-कातराक्ष्या धेन्वा निरीक्ष्यमाणः मनुष्यदेवः सुतरां दयालुः सन् पुनः अपि उवाच।

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः
प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥५३॥

सञ्जी०। 'क्षणु हिंसायाम्' इति धातोः संपदादित्वात्क्विप्। "गमादीनाम्" इति वक्तव्यादनुनासिकलोपे तुगागमे च क्षदिति रूपं सिद्धम्। क्षतो नाशात् त्रायत इति क्षत्रः। सुपीति योगविभागात्कः। तामेतां व्युत्पत्तिं कविरर्थतोऽनुक्रामति—क्षतादित्यादिना। उदग्र उन्नतः क्षत्रवर्णस्य शब्दो वाचकः। क्षत्रशब्द इत्यर्थः। क्षतात्त्रायत इति व्युत्पत्त्या भुवनेषु रूढः किल प्रसिद्धः खलु। नाश्वकर्णादिवत्केवलरूढः किंतु पङ्कजादिवद्योगरूढ इत्यर्थः ततः किमित्यत आह—तस्य क्षत्रशब्दस्य विपरीतवृत्तेर्विरुद्धव्यापारस्य क्षतस्त्राणमकुर्वतः पुंसो राज्येन किम्। उपक्रोशमलीमसैर्निन्दामलिनैः। 'उपक्रोशो जुगुप्सा च कुत्सा निन्दा च गर्हणे' इत्यमरः। "ज्योत्स्नातमिस्रा०" इत्यादिना मलीमसशब्दो निपातितः। 'मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम्' इत्यमरः। तैः प्राणैर्वा किम्। निन्दितस्य सर्वं व्यर्थमित्यर्थः। एतेन 'एकात-पत्रम्' इत्यादिना श्लोकद्वयेनोक्तं प्रत्युक्तमिति वेदितव्यम्।

Prose Order :—उदग्रः क्षत्रस्य शब्दः क्षतात् त्रायते इति व्युत्पत्त्या किल (अस्ति) तद्विपरीतवृत्तेः राज्येन किम्, उपक्रोशमलीमसैः प्राणैः वा किम्।

कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षे-
र्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम्।
इमामनूनां सुरभेरवेहि
रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयास्याम् ॥५४॥

सञ्जी०। अनुनयः क्रोधापनयः चकारो वाक्कारार्थः महर्षेरनुनयो वान्यासां पयस्विनीनां दोग्ध्रीणां गवां विश्राणनाद्दानात्। 'त्यागो विहापितं दानमुत्सर्जनविसर्जने। विश्राणनं वितरणम्' इत्यमरः। कथं नु शक्यः न शक्य इत्यर्थः। अत्र हेतुमाह—इमां गां सुरभेः कामधेनोः। "पंचमी विभक्ते" इति पंचमी। अनूनामन्यूनामवेहि जानीहि—तर्हि कथमस्याः परिभवोऽभूदित्याह—रुद्रौजसेति अस्यां गवि त्वया कर्त्रा प्रहृतं प्रहारस्तु। नपुंसके भावे क्तः। रुद्रौजसेश्वरसामर्थ्येन। न तु स्वयमित्यर्थः। "सप्तम्यधिकरणे च" इति सप्तमी।

Prose Order :—अन्यपयस्विनीनाम् विश्राणनात् महर्षेः अनुनयः कथम् शक्यः, इमाम् सुरभेः अनूनाम् अवेहि अस्याम् त्वया प्रहृतम् रुद्रौजसा।

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण
न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः।
न पारणा स्याद्विहिता तवैवं
भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ॥५५॥

सञ्जी०। सेयं गौर्मया। निष्क्रीयते प्रत्याह्रियतेऽनेन परिगृहीतमिति निष्क्रयः प्रतिशीर्षकम् "एरच्" इत्यच्प्रत्ययः। स्वदेहार्पणमेव निष्क्रयस्तेन भवत्तस्त्वत्तः पञ्चम्यास्तसिल्। मोचयितुं न्याय्या न्यायादनपेता युक्तेत्यर्थः। "धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते" इत्यनेन यत्प्रत्ययः। एवं सति तव पारणा भोजनं विहता न स्यात् मुनेः क्रिया होमादिः स एवार्थः प्रयोजनम् स चालुप्तः भवेत् स्वप्राणव्ययेनापि स्वामिगुरुधनं संरक्ष्यमिति भावः।

Prose Order :—मया स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण सा इयम् भवत्तः मोचयितुम् न्याय्या, एवम् तव पारणा विहता न स्यात् मुनेः क्रियार्थः च अलुप्तः भवेत्।

भवानपीदं परवानवैति
महान् हि यत्नस्तव देवदारौ।
स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे
विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ॥५६॥

सञ्जी०। परवान्स्वामिपरतन्त्रो भवानपि। 'परतन्त्र पराधीनः परवान्नाथवानपि' इत्यमरः। इदं वक्ष्यमाणमवैति। भवतानुभूयत एवेत्यर्थः "शेषे प्रथमः" इति प्रथमपुरुषः किमित्यत आह—हि यस्माद्धेतोः। 'हि हेतावववारणे' इत्यमरः। तव देवदारौ विषये महान्यत्नः महता यत्नेन रक्ष्यत इत्यर्थः। इत्शब्दोक्तमर्थं दर्शयति स्थातुमिति। रक्ष्यं वस्तु विनाश्य विनाशं गमयित्वा स्वयमक्षतेनाव्रणेन नियुक्तेनेति शेषः नियोक्तुः स्वामिनोऽग्रे स्थातुं शक्यं नहि।

Prose Order :—परवान् भवान् अपि इदम् अवैति, हि तव देवदारौ महान् यत्नः रक्ष्यम् (वस्तु) विनाश्य स्वयम् अक्षतेन (सता) नियोक्तुः अग्रे स्थातुम् नहि शक्यम्।

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं
यशः शरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां
पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ॥५७॥

सञ्जी०। किमपि किंवाहं तवाहिंस्योऽवध्यो मतश्चेत्तर्हि मे यश एव शरीरं तस्मिन्दयालुः कारुणिको भव। 'स्याद्दयालुः कारुणिकः' इत्यमरः। ननु मुख्यमुपेक्ष्यामुख्यशरीरे कोऽभिनिवेशः अत आह—एकान्तेति। मद्विधानां मादृशानां विवेकिनामेकान्तविध्वंसिष्ववश्यविनाशिषु भौतिकेषु पृथिव्यादि-भूतविकारेषु पिण्डेषु शरीरेष्वनास्था खल्वनपेक्षैव। "आस्था त्वालम्बनास्था-नयत्नापेक्षासु कथ्यते" इति विश्वः।

Prose Order :—किमपि अहं तव अहिंस्यः मतः (अस्मिन्) चेत् (तर्हि त्वं) मे यशः शरीरे दयालुः भव; मद्विधानाम् एकान्तविध्वंसिषु भौतिकेषु पिण्डेषु खलु अनास्था (भवति)।

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहु-
र्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते।
तद्भूतनाथानुग नार्हसि त्वं
सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ॥५८॥

सञ्जी०। सम्बन्धं सख्यम्। आभाषणमालापः पूर्वं कारणं यस्य

समाहुः। 'स्यादाभाषणमालापः' इत्यमरः। स तादृक्संबन्धो वनान्ते संगतयोर्नावावयोर्वृत्तो जातः। तत्ततो हेतोर्हे भूतनाथानुग शिवानुचर। एतेन तस्य महत्त्वं सूचयति। अतएव सम्बन्धिनो मित्रस्य मे प्रणयं याच्ञाम्। 'प्रणयास्त्वमी। 'विश्रम्भयाच्ञाप्रेमाणः' इत्यमरः। हन्तुं नार्हसि।

Prose Order :—सम्बन्धम् आभाषणपूर्वम् आहुः; स वनान्ते संगतयोः नौ वृत्तः, तत् हे भूतनाथानुग त्वम् सम्बन्धिनः मे प्रणयम् विहन्तुम् न अर्हसि।

तथेति गामुक्तवते दिलीपः
सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः।
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेह-
मुपानयत् पिण्डमिवामिषस्य ॥५९॥

सञ्जी०। तथेति गामुक्तवते हरये सिंहाय। 'कपौ सिंहे सुवर्णे च वर्णे विष्णौ हरिं विदुः' इति शाश्वतः। सद्यस्तत्क्षणे प्रतिष्टम्भात्प्रतिबन्धाद्विमुक्तो बाहुर्यस्य स दिलीपः। न्यस्तशस्त्रस्त्यक्तायुधः सन्। स्वदेहम्। आमिषस्य मांसस्य। 'पललं क्रव्यमामिषम्' इत्यमरः। पिण्डं कवलमिव उपानयत्समर्पितवान्। एतेन निर्ममत्वमुक्तम्।

Prose Order :—स दिलीपः, "तथा इति" गाम् उक्तवते हरये सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः न्यस्तशस्त्रः (सन्) स्वदेहम् आमिषस्य पिण्डम् इव उपानयत्।

तस्मिन् क्षणे पालयितुः प्रजाना-
मुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम्।
अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः
पपात विद्याधरहस्तमुक्ता ॥६०॥

सञ्जी०। तस्मिन्क्षणे उग्रं सिंहनिपातमुत्पश्यत उत्प्रेक्षमाणस्य तर्कयतोऽवाङ्मुखस्याधोमुखस्य 'स्यादवाङ्प्यधोमुखः' इत्यमरः। प्रजानां पालयितुः राज्ञः उपर्युपरिष्टात् 'उपर्युपरिष्टात्' इति निपातः। विद्याधराणां देवयोनिविशेषाणां हस्तैर्मुक्ता पुष्पवृष्टिः पपात।

Prose Order :—तस्मिन् क्षणे उग्रं सिंहनिपातम् उत्पश्यतः अवाङ्मुखस्य प्रजानाम् पालयितुः उपरि विद्याधरहस्तमुक्ता पुष्पवृष्टिः पपात।

उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं
वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन्।
ददर्श राजा जननीमिव स्वां
गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम् ॥६१॥

सञ्जी०। राजा अमृतमिवाचरतीत्यमृतायमानं तत्। "उपमानादाचारे" इति क्यच्। ततः शानच्। उत्थितमुत्पन्नं। 'हे वत्स, उत्तिष्ठ' इति वचो निशम्य श्रुत्वा। उत्थितः सन्। अस्तेः शतृप्रत्ययः। अग्रतोऽग्रे प्रस्रवः क्षीरस्रावोऽस्ति यस्याः सा तां प्रस्रविणीं गां स्वां जननीमिव ददर्श, सिंहं न ददर्श।

Prose Order :—राजा अमृतायमानम् उत्थितम्, 'हे वत्स उत्तिष्ठ' इति वचो निशम्य उत्थितः सन् अग्रतः प्रस्रविणीं गाम् स्वाम् जननीम् इव ददर्श, सिंहं न ददर्श।

तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो
मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि।
ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि
प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः ॥६२॥

सञ्जी०। विस्मितमाश्चर्यं गतम्। कर्तरि क्तः। तं दिलीपं धेनुरुवाच। किमित्यत्राह—हे साधो, मया मायामुद्भाव्य कल्पयित्वा परीक्षितोऽसि। ऋषिप्रभावान्मय्यन्तको यमोऽपि प्रहर्तुं न प्रभुर्न समर्थः। अन्ये हिंस्राः घातुकाः 'शरारुर्घातुको हिंस्रः' इत्यमरः। "नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः" इत्यादिना रप्रत्ययः। किमुत सुष्ठु। न प्रभव इति योज्यम्। 'बलवत्सुष्ठु किमुत स्वत्यतीव च निर्भरे' इत्यमरः।

Prose Order :—धेनुः विस्मितम् तम् उवाच "हे साधो मया मायाम् उद्भाव्य परीक्षितः असि। ऋषिप्रभावात् अन्तकः अपि मयि प्रहर्तुम् न प्रभुः, अन्यहिंस्राः किमुत।"

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च
प्रीतास्मि ते पुत्र वरं वृणीष्व।
न केवलानां पयसां प्रसूति-
मवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम् ॥६३॥

सञ्जी०। हे पुत्र ! गुरौ भक्त्या मय्यनुकम्पया च ते तुभ्यं प्रीतास्मि। 'क्रियाग्रहणमपि कर्त्तव्यम्' इति चतुर्थी। वरं देवेभ्यो वरणीयमर्थम् 'देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीवं मनाक्प्रिये' इत्यमरः। वृणीष्व स्वीकुरु। तथाहि। मां केवलानां पयसां प्रसूतिं कारणं नावेहि न विद्धि। किंतु प्रसन्नां माम् कामान्दोग्धीति कामदुघा, तामवेहि। "दुहः कब्घश्च" इति कप्प्रत्ययः।

Prose Order :—हे पुत्र ! गुरौ भक्त्या मयि अनुकम्पया च ते प्रीतास्मि, (त्वं) वरं वृणीष्व, माम् केवलानाम् पयसाम् प्रसूतिं न अवेहि, किन्तु प्रसन्नां माम् कामदुघाम् अवेहि।

ततः समानाय स मानितार्थी
हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।
वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं
सुदक्षिणायां तनयं ययाचे ॥६४॥

सञ्जी०। ततो मानितार्थी। स्वहस्तार्जितो वीर इति शब्दो येन सः। एतेनास्य दातृत्वं दैन्यराहित्यं चोक्तम्। स राजा हस्तौ समानीय संधाय अञ्जलिं बद्ध्वेत्यर्थः। वंशस्य कर्तारं प्रवर्तयितारम्। अत एव रघुकुलमिति प्रसिद्धिः। अनन्तकीर्तिं स्थिरयशसं तनयं सुदक्षिणायां ययाचे।

Prose Order :—ततः मानितार्थी स्वहस्तार्जितवीरशब्दः स हस्तौ समानीय वंशस्य कर्तारम् अनन्तकीर्तिं तनयं सुदक्षिणायां ययाचे।

सन्तानकामाय तथेति कामं
राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयम्
पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश ॥६५॥

सञ्जी०। सा पयस्विनी गौः। संतानं कामयत इति संतानकामः। कर्मण्यम्। तस्मै राज्ञे तथेति। काम्यत इति कामो वरः कर्मार्थे घञ्प्रत्ययः। तं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञाय हे पुत्र! मदीयं पयः पत्रपुटे पत्र-निर्मिते पात्रे दुग्ध्वोपभुङ्क्ष्व। 'उपयुङ्क्ष्व' इति वा पाठः। 'पिव' इति तमादिदेशाज्ञापितवती।

Prose Order :—सा पयस्विनी संतानकामाय राज्ञे तथा इति कामं प्रतिश्रुत्य "हे पुत्र! मदीयं पयः पत्रपुटे दुग्ध्वा उपभुङ्क्ष्व" इति तम् आदिदेश।

वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेष-
मृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः।
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं
षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः ॥६६॥

सञ्जी०। हे मातः! वत्सस्य वत्सपीतस्य शेषम् वत्सपीतावशिष्टमित्यर्थः। होम एवार्थः तस्य विधिरनुष्ठानम् तस्य च शेषम् होमावशिष्ट-मित्यर्थः। तव ऊधसि भवमौधस्यं क्षीरम् "शरीरावयवाच्च" इति यत्प्रत्ययः। रक्षिताया उर्व्याः षष्ठांशं षष्ठभागमिव ऋषेरनुज्ञामधिगम्य उपभोक्तुमिच्छामि।

Prose Order :—हे मातः, वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषं तव औधस्यं रक्षितायाः उर्व्याः षष्ठांशम् इव ऋषेः अनुज्ञाम् अधिगम्य उप-भोक्तुम् इच्छामि।

इत्थं क्षितीशेन वसिष्ठधेनु-
र्विज्ञापिता प्रीततरा वभूव।
तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः
प्रत्याययावाश्रममश्रमेण ॥६७॥

सञ्जी०। इत्थं क्षितीशेन विज्ञापिता वसिष्ठस्य धेनुः प्रीततरा। पूर्वंशुश्रूषया प्रीता संप्रत्यनया विज्ञापनया प्रीततरातिसंतुष्टा वभूव। तदन्विता तेन दिलीपेनान्विता हैमवताद्धिमवत्संवन्धिनः कुक्षेर्गुहायाः सकाशादश्रमेणानायासेनाश्रमं प्रत्याययावागता च।

Prose Order :—क्षितीशेन इत्थं विज्ञापिता वसिष्ठधेनुः प्रीततरा बभूव, तदन्विता (सती) हैमवतात् कुक्षेः अश्रमेण आश्रमं च प्रत्याययौ।

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं
गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै
शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥६८॥

सञ्जी०। प्रसन्नेन्दुरिव मुखं यस्य स नृपाणां गुरुर्दिलीपः प्रहर्षचिह्नैर्मुखरागादिभिरनुमितमूहितं तस्या धेनोः प्रसादमनुग्रहं प्रहर्षचिह्नैरेव ज्ञातत्वात्पुनरुक्तयेव वाचा गुरवे निवेद्य विज्ञाप्य पश्चात्प्रियायै शशंस। कथितस्यैव कथनं पुनरुक्तिः। न चेह तदस्ति। किन्तु चिह्नैः कथितप्रायत्वात्पुनरुक्तयेव स्थितयेत्युत्प्रेक्षा।

Prose Order :—प्रसन्नेन्दुमुखः नृपाणां गुरुः प्रहर्षचिह्नानुमितं तस्याः प्रसादं पुनरुक्तया इव वाचा गुरवे निवेद्य प्रियायै शशंस।

स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा
सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम्।
पपौ वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः
शुभ्रं यशो मूर्त्तमिवातितृष्णः ॥६९॥

सञ्जी०। अनिन्दितात्माऽगर्हितस्वभावः सत्सु वत्सलः प्रेमवान्सद्वत्सलः। "वत्सांसाभ्यां कामबले" इति लच्प्रत्ययः। वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः कृतानुमतिः स राजा वत्सस्य हुतस्य चावशेषं पीतहुतावशिष्टं नन्दिन्याः स्तन्यं क्षीरम् शुभ्रं मूर्त्तं परिच्छिन्नं यश इव अतितृष्णः सन्पपौ।

Prose Order :—अनिन्दितात्मा सद्वत्सलः स वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः अतितृष्णः (इव) वत्सहुतावशेषं नन्दिनीस्तन्यं मूर्त्तं शुभ्रं यश इव पपौ।

प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते
प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य।
तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानीम्
प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः ॥७०॥

सञ्जी०। वशी वसिष्ठः प्रातः यथोक्तस्य पूर्वोक्तस्य व्रतस्य गोसेवारूपस्याङ्गभूता या पारणा तस्या अन्ते प्रास्थानिकं प्रस्थानकाले भवम्। तत्कालोचितमित्यर्थः। "कालाट्ठञ्" इति ठञ्प्रत्ययः। 'यथाकथंचिद् गुणवृत्त्यापि काले वर्त्तमानत्वात्प्रत्यय इष्यते' इति वृत्तिकारः। ईयते प्राप्यतेऽनेनेत्ययनं स्वस्त्ययनं शुभावहमाशीर्वादं प्रयुज्य तौ दंपती स्वां राजधानीं पुरम् प्रति प्रस्थापयामास।

Prose Order :—वशी वसिष्ठः प्रातः यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य तौ दंपती स्वां राजधानीं प्रति प्रस्थापयामास।

प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताश-
'मनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च।
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे
सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः ॥७१॥

सञ्जी०। नृपो हुतं तर्पितम् हुतमश्नातीति हुताशोऽग्निः "कर्मण्यण्।" तं भर्तुर्मुनेरनन्तरम् प्रदक्षिणानन्तरमित्यर्थः अरुन्धतीं च सवत्सां धेनुं च प्रदक्षिणीकृत्य प्रगतो दक्षिणं प्रदक्षिणम् "तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च" इत्यव्ययीभावः, ततश्च्विः। अप्रदक्षिणं प्रदक्षिणं संपद्यमानं कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य सद्भिर्मङ्गलैः प्रदक्षिणादिभिर्मङ्गलाचारैरुदग्रतरप्रभावः सन् प्रतस्थे।

Prose Order :—नृपो हुतं हुताशं भर्तुः अनन्तरम् अरुन्धतीं च, सवत्सां धेनुं च प्रदक्षिणीकृत्य सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः (सन्) प्रतस्थे।

श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन
स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः।
ययावनुद्घातसुखेन मार्गं
स्वेनैव पूर्णेन मनोरथेन ॥७२॥

सञ्जी०। धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुर्व्रतादिदुःखसहनशीलः स नृपः श्रोत्राभिरामध्वनिना कर्णाह्लादकरस्वनेनानुद्घातः पाषाणादिप्रतिघातरहितः अतएव सुखयतीति सुखः। तेन रथेन, स्वेन पूर्णेन सफलेन मनो-

रथेनेव मार्गमध्वानं ययौ। मनोरथपक्षे ध्वनिः श्रुतिः। अनुद्घातः इति वन्धनिवृत्तिः।

Prose Order :—धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः स श्रोत्राभिरामध्वनिना अनुद्घातसुखेन रथेन स्वेन पूर्णेन मनोरथेन इव मार्गम् ययौ।

तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन
प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम्।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भि-
र्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम् ॥७३॥

सञ्जी०। अदर्शनेन प्रवासनिमित्तेनाहितौत्सुक्यं जनितदर्शनोत्कण्ठम् प्रजार्थेन संतानार्थेन व्रतेन नियमेन कर्शितं कृशीकृतमङ्गं यस्य तम् नवोदयं नवाभ्युदयं प्रजास्तृप्तिमनाप्नुवद्भिरतिगृध्नुभिर्नेत्रैः ओषधीनां नाथं सोममिव तं राजानं पपुः अत्यास्थया ददृशुरित्यर्थः। चन्द्रपक्षे अदर्शनं कलाक्षयनिमित्तम् प्रजार्थं लोकहितार्थं व्रतं देवताभ्यः कलादाननियमः। 'तं च सोमं पपुर्देवाः पर्यायेणानुपूर्वशः' इति व्यासः। उदय आविर्भावः। अन्यत्समानम्।

Prose Order :—प्रजाः अदर्शनेन आहितौत्सुक्यं प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गं तं तृप्तिम् अनाप्नुवद्भिः नेत्रैः नवोदयम् ओषधीनां नाथम् इव पपुः।

पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकम्
प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः।
भुजे भुजङ्गेन्द्रसमानसारे
भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज ॥७४॥

सञ्जी०। पुरः पुरीरसुराणां दारयतीति पुरंदरः शक्रः। "पूःसर्वयोर्दारिसहोः" इति खच्प्रत्ययः 'वाचंयमपुरंदरौ च' इति मुमागमो निपातितः। तस्य श्रीरिव श्रीर्यस्य स नृपः पौरैरभिनन्द्यमानः। उत्पताकमुच्छ्रितध्वजम्। 'पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम्' इत्यमरः। पुरं प्रविश्य भुजंगेन्द्रेण समानसारे तुल्यबले 'सारो वले स्थिरांशे च न्याय्ये क्लीवं धरे त्रिषु' इत्यमरः। भुजे भूयो भूमेर्धुरमाससञ्ज स्थापितवान्।

४

Prose Order :—पुरंदरश्रीः पौरैरभिनन्द्यमानः सः (नृपः) उत्पताकं पुरं प्रविश्य भुजंगेन्द्रसमानसारे भुजे भूयः भूमेः धुरम् आससञ्ज।

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावः॥७५॥

सञ्जी०। अथ द्यौः सुरवर्त्म। 'द्यौः स्वर्गसुरवर्त्मनोः' इति विश्वः। अत्रेर्महर्षेर्नयनयोः समुत्थमुत्पन्नं नयनसमुत्थम्। 'आतश्चोपसर्गे' इति कप्रत्ययः। ज्योतिरिव चन्द्रमिवेत्यर्थः। 'ऋक्षेशः स्यादत्रिनेत्रप्रसूतः' इति हलायुधः। चन्द्रस्यात्रिनेत्रोद्भूतत्वमुक्तं हरिवंशे—"नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद्दिशः। तद्गर्भविधिना हृष्टा दिशो देव्यो दधुस्तदा। समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन्। स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभावितः। पपात भावयंल्लोकाञ्छतांशुः सर्वभावनः।" इति सुरसरिद्गंगा वह्निना निष्ठ्यूतं विक्षिप्तम् 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' इत्यनेन निपूर्वात्ष्ठीवतेर्वकारस्य ऊठ्। 'नुन्ननुत्तास्तनिष्ठ्यूताविद्धक्षिप्तेरिताः समाः' इत्यमरः। ऐशं तेजः स्कन्दमिव। अत्र रामायणम्—'ते गत्वा पर्वतं रामं कैलासं धातुमण्डितम्। अग्निं नियोजयामासुः पुत्रार्थं सर्वदेवतः॥ देवकार्यमिदं देव समाधत्स्व हुताशन। शैलपुत्र्या महातेजो गंगायां तेज उत्सृज॥ देवतानां प्रतिज्ञाय गंगामभ्येत्य पावकः। गर्भं धारय वै देवि देवतानामिदं प्रियम्। इत्येतद्वचनं श्रुत्वा दिव्यं रूपमधारयत्। स तस्या महिमां दृष्ट्वा समन्तादवतीर्य च। समन्ततस्तु तां देवीमभ्यषिञ्चत पावकः। सर्वस्रोतांसि पूर्णानि गङ्गाया रघुनन्दन॥' इति राज्ञी सुदक्षिणा नरपतेर्दिलीपस्य कुलभूत्यै संततिलक्षणायै गुरुभिर्महद्भिर्लोकपालानामनुभावैस्तेजोभिर्निविष्टमनुप्रविष्टं गर्भमाधत्त दधावित्यर्थः। अत्र मनुः—'अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः' इति। अत्र आधत्त इत्यनेन स्त्रीकर्तृकधारणमात्रमुच्यते। तथा मन्त्रे च दृश्यते—'यथेयं पृथिवी मह्यमुत्ताना गर्भमादध। एवं त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतये॥' इत्याश्वलायनानां सीमन्तमंत्रे स्त्रीव्यापारधारण आधानशब्दस्य

प्रयोगदर्शनादिति । मालिनीवृत्तमेतत् । तदुक्तम्—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इत-लक्षणात् ।

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतो महाकवि-
श्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
नन्दिनीवरप्रदानो नाम
द्वितीयः सर्गः ॥२॥

Prose Order :—अथ अत्रिनयनसमुत्थं ज्योतिः द्यौः इव, वह्निनिष्ठ्यूतम् ऐशं तेजः सुरसरित् इव, नरपतिकुलभूत्यै राज्ञी गुरुभिः लोकपालानुभावैः अभिनिविष्टं गर्भम् आधत्त ।

टिप्पणी—अतः परं रघुजन्मादिवर्णनं तृतीयसर्गात् प्रस्तूयते ।

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः
प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥७६॥

सञ्जी० । तत्क्षणं तस्मिन् क्षणं । कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया । दिशः प्रसेदुः प्रसन्ना बभूवुः । मरुतो वाताः सुखा मनोहरा ववुः । अग्निः प्रदक्षिणार्चिः सन् हविराददे स्वीचकार । इत्थं सर्वं शुभशंसि शुभसूचकं बभूव । तथाहि । तादृशां रघुप्रकाराणां भवो जन्म लोकाभ्युदयाय भवति इति शेषः । ततो देवा अपि संतुष्टा इत्यर्थः ।

Prose Order :—तत्क्षणं दिशः प्रसेदुः मरुतः सुखाः ववुः, अग्निः प्रदक्षिणार्चिः (सन्) हविः आददे, (इत्थं) सर्वं शुभशंसि बभूव; हि तादृशां भवः लोकाभ्युदयाय (भवति) ।

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते
कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम्
अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः
शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥७७॥

सञ्जी०। भूपतेर्दिलीपस्यामृतसम्मिताक्षरममृतसमानाक्षरम्। 'सरूपसमसंमिताः' इत्याह दण्डी। कुमारजन्म पुत्रोत्पत्तिं शंसते कथयते शुद्धान्तचरायान्तःपुरचारिणे जनाय त्रयमेवादेयमासीत्। किं तद्। शशिप्रभमुज्ज्वलं छत्रम्। उभे चामरे च। छत्रादीनां राज्ञः प्रधानाङ्गत्वादिति भावः।

Prose Order :—भूपतेः अमृतसंमिताक्षरं कुमारजन्म शंसते शुद्धान्तचराय जनाय त्रयमेव अदेयमासीत्—शशिप्रभं छत्रम्, उभे चामरे च।

निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा
नृपस्य कान्तं पिवतः सुताननम्।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद्
गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि ॥७८॥

सञ्जी०। निवातो निर्वातप्रदेशः 'निर्वातावाश्रयावातौ' इत्यमरः। तत्र यत्पद्मं तद्वत् स्तिमितेन निष्पन्देन चक्षुषा नेत्रेण कान्तं सुन्दरं सुताननं पुत्रमुखं पिवतस्तृष्णया पश्यतो नृपस्य गुरुरुत्कटः प्रहर्षः कर्ता इन्दुदर्शनाद् गुरुर्महोदधेः पूरो जलौघ इव आत्मनि शरीरे न प्रबभूव स्थातुं न शशाक। अन्तर्न माति स्मेति यावत्। न ह्यल्पाधारे अधिकं नीयत इति भावः। यद्वा हर्षं आत्मनि स्वस्मिन् विषये न प्रबभूव। आत्मानं नियन्तुं न शशाक। किंतु बहिर्निर्जगामेत्यर्थः।

Prose Order :—निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा कान्तं सुताननं पिबतः, नृपस्य गुरुः प्रहर्षः इन्दुदर्शनात् महोदधेः पूरः इव आत्मनि न प्रबभूव।

सुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्वनाः
प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः
पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥७९॥

सञ्जी०। सुखः सुखकरः श्रवः श्रवणं येषां ते सुखश्रवाः श्रुतिसखा इत्यर्थः। मङ्गलतूर्यनिस्वना मङ्गलवाद्यध्वनयो वारयोषितां वेश्यानाम्। 'वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवा' इत्यमरः। प्रमोदनृत्यैर्हर्षनर्तनैः सह मागधीपतेर्दिलीपस्य सद्मनि केवलं गृहे एव न व्यजृम्भन्त। किन्तु द्यौरोको

येषां ते दिवौकसो देवाः। पृषोदरादित्वात् साधुः। तेषां पथ्याकाशेऽपि व्यजृम्भन्त। तस्य देवांशत्वाद्देवोपकारित्वाच्च देवदुन्दुभयोऽपि नेदुरिति भावः।

Prose Order :—सुखश्रवाः मङ्गलतूर्यनिस्वनाः वारयोषितां प्रमोदनृत्यैः सह मागधीपतेः सद्मनि केवलं न व्यजृम्भन्त, दिवौकसां पथि अपि (च व्यजृम्भन्त)।

न संयतस्तस्य बभूव राक्षतु-
र्विसर्जयेद्यं सुतजन्महर्षितः।
ऋणाभिधानात् स्वयमेव केवलं
तदा पितॄणां मुमुचे स बन्धनात्॥८०॥

सञ्जी०। रक्षितुः सम्यक्पालनशीलस्य तस्य दिलीपस्य। अतएव चौराद्यभावात्। संयतो बद्धो न बभूव नाभूत्। किं तेनात आह—विसर्जयेदिति सुतजन्मना हर्षितस्तोषितः सन्। यं बद्धं विसर्जयेद् विमोचयेत्। किन्तु स राजा तदा पितॄणामृणाभिधानाद् बन्धनात् केवलमेकं यथा तथा। स्वयमेव एक एवेत्यर्थः। 'केवलः कृत्स्न एकश्च केवलश्चावधीरितः' इति शाश्वतः। मुमुचे। कर्मकर्तरि लिट्। स्वयमेव मुक्त इत्यर्थः। अस्मिन्नर्थे—'एष वा अनृणो यः पुत्री' इति श्रुतिः प्रमाणम्।

Prose Order :—रक्षितुः तस्य संयतः न बभूव सुतजन्महर्षितः यं विसर्जयेत्। सः तदा पितॄणां ऋणाभिधानात् बन्धनात् केवलं स्वमेव मुमुचे।

पितुः प्रयत्नात् स समग्रसंपदः
शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधिते-
रनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः॥८१॥

सञ्जी०। स रघुः समग्रसंपदः पूर्णलक्ष्मीकस्य पितुर्दिलीपस्य प्रयत्नाच्छुभैर्मनोहरैः शरीरावयवैः। हरिदश्वदीधितेः सूर्यस्य रश्मेः। 'भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः' इत्यमरः। अनुप्रवेशाद् बालचन्द्रमा इव दिने दिने प्रतिदिनम। नित्यवीप्सयोः इति द्विर्वचनम्। वृद्धिं पुपोष।

अत्र वराहसंहितावचनम्—सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्। क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः इति।

Prose Order :—सः समग्रसंपदः पितुः प्रयत्नात् शुभैः शरीरावयवैः हरिदश्वदीधितेः अनुप्रवेशात् बालचन्द्रमा इव दिने दिने वृद्धिं पुपोष।

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा
यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी
ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥८२॥

सञ्जी०। उमावृषाङ्कौ पार्वतीवृषभध्वजौ शरजन्मना कार्तिकेयेन कार्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः इत्यमरः। यथा ननन्दतुः। शचीपुरन्दरौ जयन्तेन जयन्ताख्येन सुतेन। जयन्तः पाकशासनिः इत्यमरः। यथा ननन्दतुः। तथा तत्समौ ताभ्यामुमावृषाङ्काभ्यां शचीपुरन्दराभ्यां च समौ समानौ सा मागधी नृपस्य तत्सदृशेन ताभ्यां कुमारजयन्ताभ्यां सदृशेन सुतेन ननन्दतुः। मागधी प्राग्व्याख्याता।

Prose Order :—उमावृषांकौ शरजन्मना यथा, शचीपुरंदरौ जयन्तेन यथा, तथा तत्समौ सा मागधी नृपः च तत्सदृशेन ननन्दतुः।

उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो
ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम्।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया
पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः ॥८३॥

सञ्जी०। सोऽर्भकः शिशुः। पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः इत्यमरः। धात्र्या उपमात्रा। धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु इति विश्वः। प्रथममुदितमुपदिष्टं वच उवाच। तदीयामङ्गुलिमवलम्ब्य ययौ च। प्रणिपातस्य शिक्षयोपदेशेन नम्रोऽभूच्च। इति यत्तेन पितुर्मुदं ततान।

Prose Order :—सः अर्भकः धात्र्या प्रथमोदितं वचः उवाच। तदीयामङ्गुलिमवलम्ब्य ययौ च प्रणिपातशिक्षया नम्रः अभूच्च, तेन पितुर्मुदं ततान।

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकै-
रमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं
नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत् ॥८४॥

सञ्जी०। चूडा कार्या द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्या श्रुतिचोदनात् इति मनुस्मरणात् तृतीये वर्षे वृत्तचूलो निष्पन्नचूडाकर्मा सन्। डलयोरभेदः। स रघुः प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे विद्यारम्भं च कारयेत् इति वचनात् पञ्चमे वर्षे चलकाकपक्षकैश्चलशिखण्डकैः। बालानां तु शिखा प्रोक्ता काकपक्षः शिखण्डकः इति हलायुधः। सवयोभिः स्निग्धैः। स्निग्धो वयस्यः सवयाः इत्यमरः। अमात्यपुत्रैरन्वितः सन्। लिपेः पञ्चाशद्वर्णात्मिकायाः मातृकायाः यथावद् ग्रहणेन सम्यग्बोधेन उपायभूतेन वाङ्मयं शब्दजातम्। नद्या मुखं द्वारम्। मुखं तु वदने मुख्यारम्भे द्वाराभ्युपाययोः इति यादवः। तेन कश्चिन्मकरादिः समुद्रमिव। आविशत् प्रविष्टः ज्ञातवानित्यर्थः।

Prose Order :—वृत्तचूलः सः चलकाकपक्षकैः सवयोभिः अमात्यपुत्रैः अन्वितः लिपेः यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेन समुद्रमिव आविशत्।

अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो
विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।
अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते
क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ॥८५॥

सञ्जी०। गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भाच्च द्वादशे विशः इति मनुस्मरणादथ गर्भैकादशेऽब्दे विधिवदुपनीतं गुरुप्रियमेनं रघुं विपश्चितो विद्वांसो गुरवो विनिन्युः शिक्षितवन्तः। ते गुरवोऽत्रास्मिन् रघाववन्ध्ययत्नाश्च बभूवुः। तथाहि। क्रिया शिक्षा। क्रिया तु निष्कृतौ शिक्षाचिकित्सोपायकर्मसु इति यादवः। वस्तुनि पात्रभूते उपहिता प्रयुक्ता प्रसीदति फलति। क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम् इति कौटिल्यः।

Prose Order :—अथ विधिवत् उपनीतं गुरुप्रियं एनं विपश्चितः गुरवः विनिन्युः। ते अत्र अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुः। हि क्रिया वस्तूपहिता (सती) प्रसीदति।

धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः
क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमाः ।
ततार विद्याः पवनातिपातिभि-
र्दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः ॥८६॥

सञ्जी०। धिय इति। अत्र कामन्दकः—शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः इति। आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती। एता विद्याश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः इति च। उदारधीरुत्कृष्टबुद्धिः स रघुः समग्रैर्धियो गुणैः। चत्वारोऽर्णवा उपमा यासां ताश्चतुरर्णवोपमाः तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च इत्युत्तरपदसमासः। चतस्रो विद्याः। हरितां दिशामीश्वरः सूर्यः पवनातिपातिभिर्हरिद्भि-र्निजाश्वैः। हरित्ककुभि वर्णे च तृणवाजिविशेषयोः इति विश्वः। चतस्रो दिश इव। क्रमात् ततार। चतुरर्णवोपमत्वं दिशामपि द्रष्टव्यम्।

Prose Order :—उदारधीः सः समग्रैः धियः गुणैः चतुरर्णवोपमाः चतस्रः विद्याः हरिताम् ईश्वरः पवनातिपातिभिः हरिद्भिः दिशः इव, क्रमात् ततार।

त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवी-
मशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत् ।
न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः
क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः ॥८७॥

सञ्जी०। स रघुः कार्ष्णरौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः। वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमादिकानि च इति मनुस्मरणान्मेध्यां शुद्धां रौरवीं रुरुसम्बन्धिनीम्। रुरुर्महाकृष्णसारः इति यादवः। त्वचं चर्म परिधाय वसित्वा मन्त्रवत् समन्त्रकमस्त्रमाग्नेयादिकं पितुरेवोपाध्यायादशिक्षतभ्यस्तवान्। आख्यातोपयोगे इत्युपादानसंज्ञा। पितुरेवेत्यवधारणमुपपादयति—नेति।

तद्गुरुरेकोऽद्वितीयः पार्थिवः केवलं पृथिवीश्वर एव नाभूत् किन्तु क्षितौ स दिलीपो एको धनुर्धरोऽप्यभूत्।

Prose Order :—सः मेध्यां रौरवीं त्वचं परिधाय मन्त्रवत् अस्त्रं पितुः एव अशिक्षत। तद्गुरुः एकपार्थिवः केवलं न, क्षितौ सः एकधनुर्धरोऽपि अभूत्।

महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव
द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव।
रघुः क्रमाद् यौवनभिन्नशैशवः
पुपोष गाम्भीर्यमनोहरं वपुः ॥८८॥

सञ्जी.। रघुः क्रमाद् यौवनेन भिन्नशैशवो निरस्तशिशुभावः सन्। महानुक्षा महोक्षा महर्षभः। अचतुर—इत्यादिना निपातनादकारान्तत्वम्। तस्य भावस्तत्ता तां स्पृशन् गच्छन्। वत्सतरो दम्य इव। दम्यवत्सतरौ समौ इत्यमरः। द्विपेन्द्रभावं महागजत्वं श्रयन् व्रजन् कलभः करिपोत इव। गाम्भीर्येण अचापलेन मनोहरं वपुः पुपोष।

Prose Order :—रघुः क्रमात् यौवनभिन्नशैशवः महोक्षतां स्पृशन् वत्सतरः इव, द्विपेन्द्रभावं श्रयन् कलभः इव, गाम्भीर्यमनोहरं वपुः पुपोष।

युवा युगव्यायतबाहुरंसलः
कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः।
वपुः प्रकर्षादजयद् गुरुं रघु-
स्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत ॥८९॥

सञ्जी०। युवा। युगो नाम धुर्यस्कन्धगः सच्छिद्रप्रान्तो यानाङ्गभूतो दारुविशेषः। यानाद्यङ्गे युगः पुंसि युगं युग्मे कृतादिषु इत्यमरः। युगवद् व्यायतौ दीर्घौ बाहू यस्य सः। अंसावस्य स्त इत्यंसलो बलवान्। मांसलश्चेति वृत्तिकारः। बलवान्मांसलोंऽसलः इत्यमरः। वत्सांसाभ्यां कामबले इति लच्प्रत्ययः। कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरो विशालग्रीवः। 'परिणाहो विशालता

इत्यमरः। रघुर्वपुषः प्रकर्षादाधिक्याद् यौवनकृताद् गुरुं पितरमजयत। तथापि विनयान्नम्रत्वेन नीचैरल्पकोऽदृश्यत। अनौद्धत्यं च विवक्षितम्।

Prose Order :—युवा युगव्यायतबाहुः अंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः रघुः वपुः प्रकर्षात् गुरुमजयत तथापि विनयात् नीचैरदृश्यत।

ततः प्रजानां चिरमात्मना धृतां
नितान्तगुर्वीं लघयिष्यता धुरम्।
निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ
नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक् ॥९०॥

सञ्जी०। तत आत्मना चिरं धृतां नितान्तगुर्वीम्। वोतो गुणवचनात् इति ङीष्। प्रजानां धुरं पालनप्रयासं लघयिष्यता लघुं करिष्यता। तत्करोति तदाचष्टे इति लघुशब्दाण्णिच्। ततो लृटः सद्वा इति शतृप्रत्ययः। नृपेण दिलीपेनासौ रघुर्निसर्गेण स्वभावेन संस्कारेण शास्त्राभ्यासजनितवासनया च विनीतो नम्र इति हेतोः। युवराज इति शब्दं भजतीति तथोक्तः। भजो ण्विः इति ण्विप्रत्ययः। चक्रे कृतः। द्विविधो विनयः स्वाभाविकः कृत्रिमश्च इति कौटिल्यः। तदुभयसंपन्नत्वात् पुत्रं युवराजं चकारेत्यर्थः। अत्र कामन्दकः— विनयोपग्रहान् भूत्यै कुर्वीत नृपतिः सुतान्। अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते। विनीतमौरसं पुत्रं यौवराज्येऽभिषेचयेत् इति।

Prose Order :—ततः आत्मना चिरं धृतां नितान्तगुर्वीं प्रजानां धुरं लघयिष्यता नृपेण असौ निसर्गसंस्कारविनीतः इति युवराजशब्दभाक् चक्रे।

नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं
तदास्पदं श्रीयुवराजसंज्ञितम्।
अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी
नवावतारं कमलादिवोत्पलम् ॥९१॥

सञ्जी०। गुणान् विनयादीन् सौरभ्यादींश्चाभिलषतीति गुणाभिलाषिणी श्रीः राजलक्ष्मीः पद्माश्रया च नरेन्द्रो दिलीप एव मूलायतनं प्र ानस्थानं तस्मात्। अपादानात्। अनन्तरं संनिहितम्। युवराज इति

-संज्ञास्य संजाता युवराजसंज्ञितम्। तारकादित्वादितच्प्रत्ययः। आत्मनः पदं स्थानमास्पदम्। आस्पदं प्रतिष्ठायामिति निपातः। स रघुरित्यास्पदं तदास्पदं। कमलाच्चिरोत्पन्नान्नवावतारमचिरोत्पन्नमुत्पलमिव। अंशेनागच्छत्। स्त्रियो हि यूनि रज्यन्त इति भावः।

Prose Order :—गुणाभिलाषिणी श्रीः नरेन्द्रमूलायतनादन्तरं युवराजसंज्ञितं तदास्पदं कमलात् नवावतारम् उत्पलमिव अंशेन अगच्छत्।

॥ इति शम् ॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

(EXERCISES)

1. Explain the following verses in Tika Form in Sanskrit.

(क) वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे।
सक्तांगुलिः सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे॥

(ख) स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद् ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्॥

2. Translate the following verses in Hindi or English.

(क) श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः।
ययावनुद्‌घातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन॥

(ख) नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं तदास्पदं श्रीर्युवराजसंज्ञितम्।
अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी नवावतारं कमलादिवोत्पलम्॥

3. Explain fully the following in Hindi or English.

(क) श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।

(ख) श्रद्धेव साक्षाद् विधिनोपपन्ना।

(ग) शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः।

(घ) क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति।

4. Give the purport of the following verses in your own Sanskrit.

(क) वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः।
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः॥

(ख) युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः।
वपुः प्रकर्षादजयद् गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत॥

5. Write grammatical notes on the following words.

पीतः (श्लो० १)। पयोधरीभूतः (श्लो० ३)। अर्च्यम् (श्लो० १०)। श्यामायमानानि (श्लो० १७)। शरण्यः (श्लो० ३०)। वज्रपाणिः (श्लो० ४२)। ऊर्जस्वलम् (श्लो० ५०)। औषस्यम् (श्लो० ६६)। निष्ठ्यूतम् (श्लो० ७५)। दिवौकसाम् (श्लो० ७९)। प्रतिदिनम् (श्लो० (८१)। चतुर्णवोपमाः (श्लो० ८६)।

6. Account for the Case-endings in the following words.

वनाय (श्लो० १)। गोप्तरि (श्लो० १४)। सताम् (श्लो० १६)। श्रमेण (श्लो० ३४)। तृप्त्यै (श्लो० ३९)। अल्पस्य (श्लो० ४७)। उपप्लवेभ्यः (श्लो० ४८)। कल्याणपरम्पराणाम् (श्लोक ५०)। लोकाभ्युदयाय (श्लो० ७६)। पितुः (श्लो० ८७)।

7. Expound the following samasas and name them.

जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् (श्लो० १)। अनाविष्कृतदानराजिः (श्लो० ७)। निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः (श्लो० १९)। अंकागतसत्त्ववृत्तिः (श्लो० ३८)। एकान्तविध्वंसिषु (श्लो० ५७)। प्रजार्थव्रतकर्शितांगम् (श्लो० ७३)। निवातपद्मस्तिमितेन (श्लो० ७६)। युगव्यायतबाहुः (श्लो० ८९)।

महाकविराजराजितिलकस्य भवभूतेः प्रशस्तिसंततिः

(राष्ट्रभाषायाम्)

करुणे, क्यों रोती है? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई—
'मेरी विभूति है जो, उसको 'भव-भूति' क्यों कहे कोई?'

(मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, नवम सर्ग)

१—भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु॥

(वाक्पतिराजस्य प्राकृतरचनायाः संस्कृतरूपान्तरम्)

(अष्टमशताब्दी)

२—बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा, ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते संप्रति राजशेखरः॥

राजशेखरस्य (नवमशताब्दी)

३—स्पष्टभावरसा चित्रैः पादन्यासैः प्रवर्तिता।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना॥ धनपालस्य (दशमशताब्दी)

४—भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरंगिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति॥ क्षेमेन्द्रस्य (एकादशशताब्दी)

५—कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥

कल्हणस्य (द्वादशशताब्दी)

६—भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

गोवर्धनाचार्यस्य (द्वादशशताब्दी)

७—रत्नावलीपूर्वकमन्यदास्तामसीमभोगस्य वचोमयस्य।
पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः परा विभूषा भवभूतिरेव॥
(कल्हणरचितायां सूक्तिमुक्तावल्यामुद्धृतं पद्यम्)

८—मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः सारस्वते वर्त्मनि सार्थवाहः।
वचां पताकामिव यस्य दृष्ट्वा जनः कवीनामनुपृष्ठमेति॥
(उदयसुन्दरीचम्पूकाव्यात्)

९—उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते (विक्रमार्कस्य)

भवभूति की वाग्विभूति की संक्षिप्त आलोचना

(१) स्थितिकाल—यह सौभाग्य की बात है कि भवभूति का स्थितिकाल हमें प्रायः ज्ञात हैं। कालिदास की भाँति इस विषय में हम अज्ञानमन्थर नहीं हैं। कल्हण की राजतरंगिणी से हमें यह सूचना मिलती है कि वाक्पतिराज और भवभूति—दोनों ही महाकवि यशोवर्मा के पाणिपल्लव की स्निग्ध छाया में सुखपूर्वक जीवन-यापन करते थे। इन्हीं यशोवर्मा को कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड ने लगभग ७३६ ई० में परास्त किया था। अन्य भी कुछ प्रमाण ऐसे ही उपलब्ध हैं जिनके आधार पर, बहुत कुछ निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि भवभूति का आविर्भाव ७०० ई० के आसपास हुआ था।

(२) स्थान और वंश-परिचय—भवभूति ने स्वयं अपने नाटकों की प्रस्तावना में अपना परिचय दिया है। उसी से यह ज्ञात होता है कि वे पद्मपुर नामक नगर के निवासी थे, जो विदर्भदेश (बरार) में स्थित था। वे उदुम्बरवंशी ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। भवभूति के पूर्वज कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीयशाखा के अनुयायी थे। वे निखिल वेद-वेदांगों के पारदृश्वा थे तथा यथावसर सोमयाजी भी थे। भवभूति के पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नीलकण्ठ और माता का जातुकर्णी था। उनका प्रारम्भिक नाम श्रीकण्ठ था। बाद में उनका नाम भवभृति पड़ा। इस विषय में एक जनश्रुति भी है। एक श्लोक में भवभूति ने लिखा था "साऽम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः।" बस, फिर क्या था, इसी आधार पर उनका नवीन नामकरण निष्पन्न हो गया।

(३) ग्रन्थ रचना—भवभूति के तीन नाट्य-ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

(क) महावीरचरितम् (नाटक)

(ख) मालतीमाधवम् (प्रकरण)

(ग) उत्तररामचरितम् (नाटक)

प्रथम नाटक में वाल्मीकि-रामायण के पूर्वार्द्ध की कथा सविस्तार रूप में उपनिवद्ध है। विद्वानों का कहना है कि इस नाटक पर, भास के अभिषेक नाटक तथा वालचरित का प्रभाव देख पड़ता है। नाट्यकला की दृष्टि से यह नाटक सफल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अनावश्यक रूप से लम्बे-लम्बे संवाद कथावस्तु के विकास में वाधा उपस्थित कर देते हैं।

'मालतीमाधव' में मालती और माधव की प्रणय-कथा वर्णित है। यह दस अंकों का एक प्रकरण है। मालती, पद्मावती के राजा के मन्त्रिप्रवर भूरिसेन की कन्या है और माधव, मन्त्री भूरिसेन के वाल्यसुहृद् देवराज का पुत्र है। इस प्रकरण के मध्य में श्मशान-भूमि का वड़ा ही लोमहर्षक वर्णन है। नाट्यकला की दृष्टि से यह कृति, महावीरचरित की अपेक्षा, अधिक सफल कही जा सकती है।

(४) उत्तररामचरितम्—महाकवि भवभूति का चरम नाटक है और इस नाटक में भवभूति ने करुणरस की ऐसी दिव्य मन्दाकिनी प्रवाहित की कि पाषाण भी पिघल उठते हैं और वज्र का हृदय भी फटने लगता है—'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्'। भवभूति ने सुस्पष्टतया तृतीय अंक की परिसमाप्ति में तमसा से स्वयं कहलाया है—'एको रसः करुण एव'। यह बात और है कि कुछ आलोचकों ने उत्तररामचरितम् में करुणरस न मानकर, करुणविप्रलम्भ रस माना है जो शृंगार का एक भेद है। यह नाटक भवभूति की नाट्यकला का चूडान्त निदर्शन है और इसीलिए यह उक्ति चल पड़ी कि 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।'

(५) नाटक की कथा—इस कथा का मूल वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकाण्ड है। उत्तरकाण्ड के अनुसार राम ने सीता को छोड़ दिया था और अन्ततः जव उन्होंने, सीता के सतीत्व को प्रजा के सामने प्रमाणित करने के लिए, अग्नि-परीक्षा का प्रस्ताव किया तो अभिमान और क्षोभ के मारे सीता जी पृथ्वी के अन्दर प्रवेश कर गयीं।

उत्तररामचरित की कथा का सारांश यह है—

प्रथम अंक—राम और सीता अन्तःपुर में वैठे हैं। अष्टावक्र मुनि का प्रवेश। उनके आगे प्रजारञ्जन के लिए जानकी तक को त्याग करने के लिए

५

राम की भीषण प्रतिज्ञा। इसी समय चित्रशाला में चित्रावली देखते-देखते सीता का तपोवन देखने की इच्छा प्रकट करना। दुर्मुख नाम के गुप्तचर का प्रवेश, और सीता के चरित्र के सम्बन्ध में लोकापवाद की सूचना। राम का सीता को त्याग देने का संकल्प।

द्वितीय अंक——राम का दण्डकारण्य में प्रवेश और शूद्र तपस्वी का शिरश्छेदन। राम का जनस्थान में विचरण।

तृतीय अंक——इस अंक के विष्कम्भक में तमसा और मुरला की बातचीत से प्रकट होता है कि राम के पंचवटी में आगमन-काल के सम्बन्ध में गंगा जी पर्याप्त चिन्तित हैं। इसीलिए गंगा जी ने तमसा को आदेश दिया है कि तुम रामचन्द्र के विलाप-काल में सावधान रहना तथा सीता का पूर्ण ध्यान रखना। इसके बाद समस्त अंक में वासन्ती, तमसा और छाया-सीता के सामने रामचन्द्र का कारुण्यपूर्ण विलाप वर्णित है। राम, सीता के सुखद शीतल पाणिस्पर्श का तो अनुभव करते हैं, किन्तु गंगादेवी के प्रसाद से, सीता को देख नहीं पाते।

चतुर्थ अंक——जनक, अरुन्धती और कौशल्या का विलाप। लव से मिलन।

पंचम अंक——लव और लक्ष्मणसुत चन्द्रकेतु का युद्ध।

षष्ठ अंक——लव और कुश से राम का मिलन तथा कुश के मुख से वाल्मीकिरामायण का सस्वर गान सुनना।

सप्तम अंक——राम का सीता-निर्वासन का अभिनय देखना और अन्ततः राम का सीता से पुनर्मिलन।

(६) मूल कथा में परिवर्तन——भवभूति ने कथा-भाग में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। रामायण के राम ने छल से जानकी को वन भेजा, किन्तु भवभूति के राम ने प्रजारंजन-व्रत का पालन करने के लिए जानकी को त्याग दिया। इसके अतिरिक्त, शिर काटने पर शूद्र शम्बूक का दिव्यमूर्ति बन जाना, छाया-सीता से राम की भेंट, लव और चन्द्रकेतु का युद्ध——इनमें से कोई बात रामायण में नहीं पायी जाती। सबसे बड़ा वैषम्य राम और सीता का पुनर्मिलन है।

(७) **परिवर्तन का कारण**——भारतीय प्राचीन नाटकों में, दुःखान्त नाटकों का लिखना शास्त्रकारों ने निषिद्ध कर दिया था । वीरोदात्त नायक को शेष जीवन भर यदि दुःख ही मिलता रहे, तो सामाजिकों पर बड़ा ही मर्मवेधी प्रभाव पड़ेगा। इसीलिए भवभूति ने सुखान्त नाटक की रचना की है।

(८) **भवभूति की नाट्यशैली**——स्थानाभाव के कारण सूत्ररूप में मुख्य विशेषताएँ ही दी जा रही हैं——

(क) यदि कालिदास वैदर्भी रीति के आचार्य हैं, तो भवभूति गौडी रीति के——ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्वन्ध आडम्वरः पुनः। समासवहुला गौडी——यह गौडी रीति का लक्षण है। (ख) यदि कालिदास व्यञ्जना के अद्वितीय कवि हैं, तो भवभूति अभिधा के कवि हैं, फिर भी समासशैली में भाव-चित्रण करने में भवभूति कुछ कम नहीं। (ग) यदि कालिदास को वाह्य प्रकृति के रमणीय पक्ष ने मोहित किया था, तो भवभूति को उसके भयंकर, उग्र और विषम रूप ने।

इनके अतिरिक्त भवभूति की कुछ शैलीगत निजी विशेषताएँ भी हैं। (क) भवभूति नाना रसों के निरूपण में सिद्धहस्त हैं। मालतीमाधव में वीर, रौद्र, वीभत्स, भयानक और अद्भुत रसों की अवतारणा की गयी है। स्वयं भवभूति का सिद्धान्त है——भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगाः। (ख) भवभूति की कथा में विचित्रता है और उनकी वाणी में विदग्धता है। उन्होंने स्वयं कहा है——यत्प्रौढत्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवम्, तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पांडित्यवैदग्ध्ययोः। (मालतीमाधव)। (ग) इनके नाटकों में कहीं-कहीं शब्दों के अप्रचलित रूप मिलते हैं और कहीं-कहीं अप्रचलित ऐसे शब्दों के प्रयोग हैं जो कोशों तक में नहीं मिलते हैं। (घ) शिखरिणी उनका प्रिय छन्द है, यों अनुष्टुप् भी उनका वड़ा ही चुटीला तथा मार्मिक होता है।

अन्त में स्वर्गीय डी० एल० राय की यह सम्मति छात्रों के लिए बहुत ही उपयोगी होगी——विश्वास की महिमा में, प्रेम की पवित्रता में, भाव की तरंग-क्रीड़ा में, भाषा के गाम्भीर्य में और हृदय के माहात्म्य में उत्तर-

रामचरित श्रेष्ठ है और घटनाओं की विचित्रता में, कल्पना के कोमलत्व में, मानव-चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में, भाषा की सरलता और लालित्य में अभिज्ञान-शाकुन्तल श्रेष्ठ है। संस्कृत साहित्य में ये दोनों नाटक परस्पर प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं। ये दोनों एक दूसरे के साथी हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल, शरद् ऋतु की पूर्ण चाँदनी है, उत्तररामचरित नक्षत्रखचित नील आकाश है। एक बाग का गुलाब है, दूसरा वनमालती है। एक व्यञ्जन है, दूसरा हविष्यान्न है। एक वसन्त है, दूसरा वर्षा है। एक नृत्य है, दूसरा अश्रु है। एक उपभोग है, दूसरा पूजा है।

(मूल बँगला का हिन्दी रूपान्तर)

पुनश्च "मालतीमाधव" नाटक की भूमिका में महाकवि भवभूति ने जो गर्वोक्ति की है, वह उत्तररामचरित में सार्थक हो गयी है—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम च कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

भावार्थ यह है कि जो लोग मेरे नाटकों के प्रति अवहेलना की भावना रखते हैं, वे कुछ जानते होंगे (अर्थात् बड़े गर्वोन्नत पण्डितम्मन्य होंगे)। उनके लिए मेरा यह नाट्य-रचना का प्रयास नहीं है। संसार के किसी न किसी खण्ड में, कभी न कभी, कोई न कोई समानधर्मा सहृदय पाठक उत्पन्न ही होगा; क्योंकि यह काल अनन्त है और पृथ्वी भी अनन्त है—

(For the time is boundless and the world is wide)

—Tagore.

महाकविभवभूतिविरचितम् उत्तररामचरितं
नाम नाटकम्

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नदीद्वयं तमसा मुरला च)

तमसा—सखिमुरले ! किमसि सम्भ्रान्तेव ?

मुरला—भगवति तमसे ! प्रेषिताऽस्मि भगवतोऽगस्त्यस्य पत्न्या लोपामुद्रया सरिद्वरां गोदावरीमभिधातुं जानास्येव यथा वधूत्यागात् प्रभृति—

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥१॥

तेन च तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना प्रकर्षगतेन दीर्घशोकसन्तापेन सम्प्रति अतितरां परिक्षीणो रामभद्रः, तमवलोक्य कम्पितमिव मे हृदयम्, अधुना च प्रतिनिवर्तमानेन रामभद्रेण नियतमेव पञ्चवटीवने वधूसहवासविस्रम्भसाक्षिणः प्रदेशा द्रष्टव्या; तेषु च निसर्गधीरस्यापि एवं विधायामवस्थायाम् अतिगम्भीराभोगशोकक्षोभसंवेगात् पदे पदे महान्ति प्रमादस्थानानि शङ्कनीयानि रामभद्रस्य, तद् भगवति गोदावरि ! त्वया सावधानया भवितव्यम्।

वीचीवातैः शीकरक्षोदशीतैराकर्षद्भिः पद्मकिञ्जल्कगन्धान्।
मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं स्वैरं स्वैरं प्रेषितैस्तर्पयेति ॥२॥

तमसा—उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य। संजीवनोपायस्तु मौलिक एव रामभद्रस्याद्य सन्निहितः।

मुरला—कथमिव।

तमसा—श्रूयताम्। पुरा किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात् परित्यज्य गते लक्ष्मणे सीतादेवी प्राप्तप्रसववेदनमात्मानमतिदुःखसंवेगात् गङ्गाप्रवाहे निक्षिप्तवती। तदैव तत्र दारकद्वयं प्रसूता। भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्या-

मभ्युपपन्ना रसातलं च नीता। स्तन्यत्यागात् परेण च तद्दारकद्वयं तस्याः प्राचेतसस्य महर्षेर्गङ्गादेवी स्वयमर्पितवती।

मुरला——[सविस्मयम्]

ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः।
यत्रोपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः॥३॥

तमसा——इदानीन्तु शम्बूकवृत्तान्तेनानेन सम्भावितजनस्थानागमनं रामभद्रं सरयूमुखादुपश्रुत्य भगवती भागीरथी, यदेव भगवत्या लोपामुद्रया स्नेहादाशङ्कितं तदेवाशङ्क्य सीतासमेता केनचिदिव गृहाचारव्यपदेशेन गोदावरीं विलोकयितुमागता।

मुरला——सुविचिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या। राजधानीस्थितस्य खलु तैस्तैर्जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैर्व्यापृतस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः। अव्यग्रस्य पुनरस्य शोकमात्रद्वितीयस्य पंचवटीप्रवेशो महाननर्थ इति। तत् कथमिदानीं सीतादेव्या रामभद्र आश्वासनीयः स्यात्।

तमसा——उक्तमेव भगवत्या भागीरथीदेव्या, वत्से! देवयजनसम्भवे सीते! अद्य खलु आयुष्मतोः कुशलवयोर्द्वादशजन्मसंवत्सरस्य संख्यामङ्गल-ग्रन्थिरभिवर्तते। तदात्मनः पुराणश्वशुरमेतावतो मानवस्य राजर्षिवंशस्य प्रसवितारं सवितारमपहृतपाप्मानं देवं स्वहस्तावचितैः पुष्पैरुपतिष्ठस्व। न च त्वामवनितलपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रभावाद्वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति किं पुनर्मर्त्या इति। अहञ्च ज्ञापिता तमसे! त्वयि प्रकृष्टप्रेमैव वधूर्वत्सा जानकीति अतस्त्वमेवास्याः प्रत्यनन्तरीभवेति। साऽहमधुना यथादिष्टमनुतिष्ठामि।

मुरला——अहमप्येतं वृत्तान्तं भगवत्यै लोपामुद्रायै निवेदयामि। राम-भद्रोऽप्यागत एवेति तर्कयामि।

तमसा——तदियं गोदावरीह्रदान्निष्क्रम्य

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी॥४॥

मुरला—इयं हि सा।

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलून
हृदयकुसुमशोषी दारुणो दीर्घशोकः।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव धर्मः केतकीगर्भपत्रम्॥५॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते)

शुद्धविष्कम्भः

(नेपथ्ये)

प्रमादः प्रमादः

(ततः प्रविशति पुष्पावचयव्यग्रा सकरुणौत्सुक्यमाकर्णयन्ती सीता)

सीता—अम्हहे, जानामि प्रियसखी मे वासन्ती व्याहरतीति।

(पुनर्नेपथ्ये)

सीतादेव्याः स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै-
रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्॥

सीता—किं तस्य ?

(पुनर्नेपथ्ये)

वध्वा सार्धं पयसि विहरन् सोऽयमन्येन दर्पा-
दुद्दामेन द्विरदपतिना संनिपत्याभियुक्तः॥६॥

सीता—(ससंभ्रमम् कतिचित् पदानि गत्वा)। आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व मम तं पुत्रकम्। (स्मृतिमभिनीय। सवैक्लव्यम्)। हा धिक्! हा धिक्! तान्येव चिरपरिचितान्यक्षराणि पञ्चवटीदर्शनेन मां मन्दभागिनीमनुबध्नन्ति। हा आर्यपुत्र! (इति मूर्च्छति)।

(प्रविश्य)

तमसा—वत्से, समाश्वसिहि। समाश्वसिहि।

(नेपथ्ये)

विमानराज! अत्रैव स्थीयताम्।

सीता—(समाश्वस्य ससाध्वसोल्लासम्) अम्हहे! जलभरभरितमेघमन्थरस्तनितगंभीरमांसलः कुतो न्वेष भारतीनिर्घोषो भ्रियमाणकर्णविवरां मामपि मन्दभागिनीं झटित्युच्छ्वासयति।

तमसा—(सस्नेहास्रम्) अयि वत्से !

अपरिस्फुटनिक्वाणे कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी।
स्तनयित्नोर्मयूरीव चकितोत्कण्ठितं स्थिता ॥७॥

सीता—भगवति ! किं भणसि अपरिस्फुटेति। मया पुनः स्वरसंयोगेन प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्र एव व्याहरतीति।

तमसा—श्रूयते तपस्यतः किल शूद्रस्य दण्डधारणार्थमैक्ष्वाको राजा जनस्थानमागत इति।

सीता—दिष्ट्या अपरिहीनराजधर्मः खलु स राजा।

(नेपथ्ये)

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥८॥

सीता—(दृष्ट्वा) हा कथं कथं प्रभातचन्द्रमण्डलापाण्डरपरिक्षाम-दुर्बलेन आकारेण अयं निजसौम्यगम्भीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेय आर्यपुत्र एव। भगवति तमसे ! धारय माम्। (इति तमसामाश्लिष्य मूर्च्छति)

तमसा—(धारयन्ती) वत्से ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

(नेपथ्ये)

अनेन पञ्चवटीदर्शनेन।

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ॥९॥

हा प्रिये जानकि !

तमसा—(स्वगतम्) इदं तदाशङ्कितं गुरुजनेन।

सीता—(समाश्वस्य) हा कथमेतत्।

(पुनर्नेपथ्ये)

हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि विदेहराजपुत्रि ! (इति मूर्च्छति)

सीता—हा धिक् ! हा धिक् ! मां मन्दभागिनीं व्याहृत्य आमीलन्नेत्र-नीलोत्पलो मूर्च्छित एव। हा कथं धरणिपृष्ठे निरुद्धनिःश्वासनिःसहं

विपर्यस्तः। भगवति तमसे ! परित्रायस्व। जीवय आर्यपुत्रम्। (इति पादयोः पतति)

तमसा—त्वमेव ननु कल्याणि संजीवय जगत्पतिम्।

प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैव निरतो जनः॥१०॥

सीता—यद्भवतु तद्भवतु। यथा भगवती आज्ञापयति। (इति ससंभ्रमं निष्क्रान्ता)।

(ततः प्रविशति भूम्यां निपतितः सास्रया सीतया स्पृश्यमानः साह्लादोच्छ्वासो रामः)।

सीता—(किंचित् सहर्षम्) जाने पुनः प्रत्यागतमिव जीवितं त्रैलोक्यस्य।

रामः—आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।
आतप्तजीवनपुनः परितर्पणोऽयं
संजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः॥११॥

अपि च

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव
सञ्जीवनश्च मनसः परिमोहनश्च।
संतापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा-
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति॥१२॥

सीता—(ससाध्वसोत्कम्पमुपसृत्य) एतावदेव इदानीं मे बृहत्तरम्।

रामः—(उपविश्य) न खलु वत्सलया सीतादेव्या अभ्युपपन्नोऽस्मि।

सीता—हा धिक् हा धिक् ! किमिति मामार्यपुत्रो मार्गिष्यति।

रामः—भवतु। पश्यामि।

सीता—भगवति तमसे, अपसरावस्तावत्। मां प्रेक्ष्य अनभ्यनुज्ञातेन संनिधानेन राजा अधिकं कोपिष्यति।

तमसा—अयि वत्से ! भागीरथीप्रसादाद् वनदेवतानामप्यदृश्यासि संवृत्ता।

सीता—आम्, अस्ति खलु एतत्।

रामः—हा प्रिये जानकि !

सीता—(समन्युगद्गदम्) आर्यपुत्र ! असदृशं खल्वेतद्वचनमस्या वृत्तान्तस्य । (सास्रम्) अथवा किमिति वज्रमयी जन्मान्तरेष्वपि पुनरसभावितदुर्लभदर्शनस्य मामेव मन्दभागिनीमुद्दिश्य वत्सलस्यैवंवादिन आर्यपुत्रस्योपरि निरनुक्रोशा भविष्यामि । अहमेतस्य हृदयं जानामि ममाप्येषः ।

रामः—(सर्वतोऽवलोक्य सनिर्वेदम्) हा न किंचिदत्र ।

सीता—भगवति तमसे ! तथा निष्कारणपरित्यागिनोऽप्येतस्यैवंविधेन दर्शनेन कीदृश इव मे हृदयानुबन्ध इति न जानामि ।

तमसा—जानामि वत्से जानामि ।

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा-
द्वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात् स्तम्भितमिव ।
प्रसन्नं सौजन्याद् दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन्क्षण इव ॥१३॥

रामः—देवि !

प्रसाद इव मूर्तस्ते स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः ।
अद्याप्यानन्दयति मां त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि ॥१४॥

सीता—एते खलु तेऽगाधदर्शितस्नेहसंभारा आनन्दनिष्यन्दिनः सुधामया आर्यपुत्रस्योल्लापाः येषां प्रत्ययेन निष्कारणपरित्यागशल्यितोऽपि बहुमतो मम जन्मलाभः ।

रामः—अथवा कुतः प्रियतमा । नूनं संकल्पाभ्यासपाटवोपादान एष रामस्य भ्रमः ।

(नेपथ्ये)

अहो महान् प्रमादः प्रमादः । ('सीतादेव्याः स्वकरकलितैः' इत्यर्धं पठ्यते) ।

रामः—(सकरुणौत्सुक्यम्) किं तस्य ।

(पुनर्नेपथ्ये । 'वध्वा सार्धं' इत्युत्तरार्धं पठ्यते)

सीता—क इदानीमभियोक्ष्यते ।

रामः—क्वासौ क्वासौ दुरात्मा यः प्रियायाः पुत्रकं वधूद्वितीयमभिभवति (इत्युत्तिष्ठति) ।

(प्रविश्य संभ्रान्ता)

वासन्ती—कथं देवो रघुनन्दनः।

सीता—कथं प्रियसखी वासन्ती।

वासन्ती—जयतु जयतु देवः।

रामः—(निरूप्य) कथं देव्याः प्रियसखी वासन्ती।

वासन्ती—देव, त्वर्यतां त्वर्यताम्। इतो जटायुशिखरस्य दक्षिणेन सीतातीर्थेन गोदावरीमवतीर्य संभावयतु देव्याः पुत्रकं देवः।

सीता—हा तात जटायो! शून्यं त्वया विनेदं जनस्थानम्।

रामः—अहो हृदयमर्मच्छिदः खल्वमी कथोद्घाताः।

वासन्ती—इत इतो देवः।

सीता—भगवति, सत्यमेव वनदेवता अपि मां न प्रेक्षन्ते।

तमसा—अयि वत्से सर्वदेवताभ्यः प्रकृष्टमैश्वर्यं मन्दाकिनीदेव्यास्तत् किमिति आशङ्कसे।

सीता—ततोऽनुसरावः। (इति परिक्रामति)।

रामः—भगवति गोदावरि, नमस्ते।

वासन्ती—(निरूप्य) देव! मोदस्व विजयिना वधूद्वितीयेन देव्याः पुत्रकेण।

रामः—विजयतामायुष्मान्।

सीता—अहो ईदृशो मे पुत्रकः संवृत्तः।

रामः—हा देवि दिष्ट्या वर्धसे।

येनोद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण
व्याकृष्टस्ते सुतनु लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः॥१५॥

सीता—अवियुक्त इदानीमयं दीर्घायुरनया सौम्यदर्शनया भवतु।

रामः—सखि वासन्ति, पश्य पश्य कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्यत् स्नेहादनरालनाललनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥१६॥

सीता——भगवति तमसे, अयं तावदीदृशो जातः। तौ पुनर्न जानामि कुशलवौ एतावता कीदृशौ संवृत्तौ इति।

तमसा——यादृशोऽयं तादृशौ तावपि।

सीता——ईदृशी अस्मि मन्दभागिनी यस्या न केवलं निरन्तरमार्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि।

तमसा——भवितव्यता इयम् ईदृशी।

सीता——किं वा मया प्रसूतया येन तादृशमपि मम पुत्रकयोः ईषद्विरलकोमलधवलदशनोज्ज्वलकपोलमनुबद्धमुग्धकाकलीविहसितं निबद्धकाकशिखण्डकमलमुखपुण्डरीकयुगलं न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण।

तमसा——अस्तु देवताप्रसादात्।

सीता——भगवति तमसे, एतेन अपत्यसंस्मरणेन उच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी तयोश्च पितुः संनिधानेन क्षणमात्रं संसारिण्यस्मि संवृत्ता।

तमसा——किमत्र उच्यते। प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः।

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते ॥१७॥

वासन्ती——इतोऽपि देवः पश्यतु।

अनुदिवसमवर्धयत् प्रिया ते
यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्।
मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे
नदति स एव वधूसखः शिखण्डी ॥१८॥

सीता——(सकौतुकस्नेहास्रम्) एष स एष सः।

रामः——मोदस्व वत्स, मोदस्व।

सीता——एवं भवतु।

रामः—भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्ति चक्षुः
प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या।
करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं
सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि॥१९॥

रामः—हन्त तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुध्यन्ते।
कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः
प्रियतमया परिवर्धितोऽयमासीत्॥

सीता—(निरूप्य सास्रम्) सुष्ठु प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्रेण।

रामः—स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः।
स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति॥२०॥

तमसा—अत्र तावदासनपरिग्रहं करोतु देवः।

(राम उपविशति)

वासन्ती—एतत्तदेव कदलीवनमध्यवर्ति
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।
अत्र स्थिता तृणमदाद् बहुशो यदेभ्यः
सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म॥२१॥

रामः—इदं तावदशक्यमेव द्रष्टुम्। (इत्यन्यतो रुदन्नुपविशति)

सीता—सखि वासन्ति, किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद् दर्शयन्त्या। हा धिक् हा धिक्! स एवार्यपुत्रस्तदेव पञ्चवटीवनं सैव प्रियसखी वासन्ती। त एव विविधविस्रम्भसाक्षिणो गोदावरीकाननोद्देशास्त एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिपादपाः सैव चाहम्। मम पुनर्मन्दभाग्यायाः दृश्यमानमपि सर्वमेव एतन्नास्तीति तदीदृशो जीवलोकस्य परिवर्तः।

वासन्ती—सखि सीते, कथं न पश्यति रामभद्रस्यावस्थाम्।
नवकिसलयस्निग्धैरङ्गैर्दधन्नयनोत्सवं
सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव यः।
विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः
कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः॥२२॥

सीता—प्रेक्षे सखि प्रेक्षे।

तमसा—पश्य प्रियं भूयः।

सीता—हा दैव ! एष मया विना अहमप्येतेन विनेति स्वप्नेऽपि केन सम्भावितमासीत्। तन्मुहूर्तमात्रं जन्मान्तरादिव लब्धदर्शनं वाष्प-सलिलान्तरेषु प्रेक्षे तावद्वत्सलमार्यपुत्रम् (इति पश्यन्ती स्थिता)।

तमसा—(परिष्वज्य सास्रम्)।

विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक-
प्रभवमवसृजन्ती तृष्णयोत्तानदीर्घा।
स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते
धवलवहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ॥२३॥

वासन्ती—ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः ॥२४॥

रामः—एहि सखि वासन्ति, नन्वितः स्थीयताम्।

वासन्ती—(उपविश्य सास्रम्) महाराज, अपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य।

रामः—(अश्रुतिमभिनीय)।

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरङ्गान् मैथिली यानपुष्यत्।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि
द्रव इव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेदयोग्यः ॥२५॥

वासन्ती—महाराज, ननु पृच्छामि अपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्येति।

रामः—(आत्मगतम्) अये महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपदं सौमित्रिमात्रे च वाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदितसीता-वृत्तान्तेयमिति। (प्रकाशम्) आं कुशलं कुमारस्य।

वासन्ती—(रुदती)—अयि देव, किं परं दारुणः खल्वसि ?

सीता—सखि वासन्ति, किं त्वमेवंवादिनी भवसि। प्रियार्हः खलु सर्वस्यार्यपुत्रो विशेषतो मम प्रियसख्याः।

वासन्ती—त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण ॥२६॥

(इति मुह्यति)

तमसा—अस्थाने वाक्यनिवृत्तिर्मोहश्च।

रामः—सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

वासन्ती—(समाश्वस्य) तत् किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन।

सीता—सखि वासन्ति, विरम विरम।

रामः—लोको न मृष्यतीति।

वासन्ती—कस्य हेतोः।

रामः—स एव जानाति किमपि।

तमसा—चिरादुपालम्भः।

वासन्ती—अयि कठोर यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम्।
किमभवद् विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ कथं बत मन्यसे ॥२७॥

सीता—त्वमेव सखि वासन्ति, दारुणा कठोरा च या एवम् आर्यपुत्रं प्रदीप्तं प्रदीपयसि।

तमसा—प्रणय एवं व्याहरति शोकश्च।

रामः—सखि, किमत्र मन्तव्यम्।

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे-
स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः।
ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा
क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता ॥२८॥

सीता—आर्यपुत्र, ध्रियए एषा ध्रिये।

रामः—हा प्रिये जानकि, क्वासि।

सीता—हा धिक् हा धिक्। अन्य इव आर्यपुत्रः प्रमुक्तकण्ठं रोदिति।

तमसा—वत्से! साम्प्रतिकमेवैतत्। कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते॥२९॥

विशेषतो रामभद्रस्य यस्य बहुतरप्रकारकष्टो जीवलोकः।

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा
प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति।
स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ—
स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्॥३०॥

रामः—कष्टं भोः कष्टम्।

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते,
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥३१॥

सीता—एवं त्विदम्।

रामः—हे भवन्तः पौरजानपदाः!

न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं ततः
तृणमिव वने शून्ये त्यक्त्वा न चाप्यनुशोचिता।
चिरपरिचितास्ते ते भावाः परिद्रवयन्ति मा-
मिदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदति रुद्यते॥३२॥

वासन्ती—(स्वगतम्) अतिगम्भीरमापूरणं मन्युसंभारस्य। (प्रकाशम्) देव, अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम्।

रामः—सखि, किमुच्यते धैर्यमिति।

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रनष्टमिव नामानि न च रामो न जीवति॥३३॥

सीता——मोहितोऽस्मि एतैरार्यपुत्रवचनैः।

तमसा——एवमेव वत्से।

नैताः प्रियतमा वाचः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः।
एतास्ता मधुनो धाराश्च्योतन्ति सविषास्त्वयि ॥३४॥

रामः——अयि वासन्ति, मया खलु।

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं
प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दंशः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कु-
र्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः ॥३५॥

सीता——एवमस्मि मन्दभागिनी पुनरप्यायासकारिणी आर्यपुत्रस्य।

रामः——एवमतिनिष्कम्पस्तम्भितान्तःकरणस्यापि मम संस्तुततत्तद्वस्तुदर्शनादुद्दामोऽयमावेगः। तथाहि।

लोलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं
यो यो यत्नः कथमपि मयाऽऽधीयते तं तमन्तः।
भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात् कोऽपि चेतोऽधिकार-
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ॥३६॥

सीता——एतेन आर्यपुत्रस्य दुर्वारदारुणारम्भेण दुःखसंक्षोभेण परिमुषितनिजदुःखं किमपि प्रमुग्धं मे हृदयम्।

वासन्ती——(स्वगतम्) कष्टमभ्यापन्नो देवः। तदन्यतः क्षिपामि तावत्। (प्रकाशम्) चिरपरिचितानिदानीं जनस्थानभागानवलोकनेन मानयतु देवः।

रामः——एवमस्तु (इत्युत्थाय परिक्रामति)।

सीता——संदीपन एव दुःखस्य प्रियसख्या विनोदनोपाय इति तर्कयामि।

वासन्ती——(सकरुणम्) देव देव!

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरीसैकते।

आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः ॥३७॥

सीता——दारुणासि वासन्ति ! दारुणासि यैस्तैर्हृदयमर्मगूढशल्यसंघट्टनैः पुनः पुनरपि मां मन्दभागिनीमार्यपुत्रञ्च संतापयसि।

रामः——अयि चण्डि जानकि, इतस्ततो दृश्यस इव न चानुकम्पसे।

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥३८॥

(इति मूर्च्छति)

सीता——हा धिक् हा धिक् पुनरपि प्रमूढ आर्यपुत्रः।

वासन्ती——देव, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

सीता——आर्यपुत्र, मां मन्दभागिनीमुद्दिश्य सकलजीवलोकमङ्गलाधारस्य ते वारं वारं संशयितजीवितदारुणो दशापरिणाम इति। हा हतास्मि। (इति मूर्च्छति)।

तमसा——वत्से समाश्वसिहि समाश्वसिहि। पुनस्त्वत्पाणिस्पर्श एव संजीवनोपायो रामभद्रस्य।

वासन्ती——कथमद्यापि नोच्छ्वसिति। हा प्रियसखि सीते, क्वासि संभावयात्मनो जीवितेश्वरम्।

(सीता ससंभ्रममुपसृत्य हृदि ललाटे च स्पृशति)

वासन्ती——दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो रामभद्रः।

रामः——आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपै-
रन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून्।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मा-
दानन्दादपरविधं तनोति मोहम् ॥३९॥

(आनन्दनिमीलिताक्ष एव) सखि वासन्ति, दिष्ट्या वर्धसे।

वासन्ती—देव, कथमिव।

रामः—सखि, किमन्यत्। पुनः प्राप्ता जानकी।

वासन्ती—अयि देव रामचन्द्र, क्व सा?

रामः—(स्पर्शसुखमभिनीय) पश्य, नन्वियं पुरत एव।

वासन्ती—अयि देव, किमिति मर्मच्छेददारुणैरेभिः प्रलापैः प्रियसखीदुःखदग्धामपि मां पुनर्मन्दभाग्यां दहसि।

सीता—अपसर्तुमिच्छामि। एष पुनश्चिरसद्भावसौम्यशीतलेनार्यपुत्रस्पर्शेन दीर्घदारुणमपि झटिति संतापं हरता वज्रलेपोपनिबद्ध इव स्विन्नःसहविपर्यस्तो वेपनशीलोऽवश इव मे हस्तः।

रामः—सखि, कुतः प्रलापाः?

गृहीतो यः पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधर-
श्चिरं स्वैश्छास्पर्शैरमृतशिशिरैर्यः परिचितः।

सीता—आर्यपुत्र स एव इदानीमसि त्वम्।

स एवायं तस्यास्तुहिननिकरौपम्यसुभगो
मया लब्धः पाणिर्ललितलवलीकन्दलनिभः॥४०॥

(इति गृह्णाति)

सीता—हा धिक् हा धिक्। आर्यपुत्रस्पर्शमोहितायाः प्रमादः खलु मे संवृत्तः।

रामः—सखि वासन्ति, आनन्दनिमीलितेन्द्रियः साध्वसेन परवानस्मि। तत्त्वं तावदेनां धारय।

वासन्ती—कष्टमुन्माद एव।

(सीता ससंभ्रमं हस्तमाक्षिप्यापसर्पति)

रामः—हा धिक्, प्रमादः।

करपल्लवः स तस्याः सहसैव जडो जडात् परिभ्रष्टः।
परिकम्पितः प्रकम्पी करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन्॥४१॥

सीता—हा धिक् हा धिक्। अद्यापि अनवस्थितस्तिमितमूढघूर्णन्नयनो न पर्यवस्थापयत्यात्मानम्।

तमसा—स्नेहकौतुकस्मितं निर्वर्ण्य।

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।
मरुन्नवाम्भःप्रविधूतसिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव ॥४२॥

सीता—(स्वगतम्) अम्हहे, अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया। किमिति किलैषा मंस्यत एष ते परित्याग एषोऽभिषङ्ग इति।

रामः—(सर्वतोऽवलोक्य) हा कथं नास्त्येव। नन्वकरुणे वैदेहि!

सीता—सत्यमकरुणास्मि यैवंविधं प्रेक्षमाणा जीवाम्येव।

रामः—क्वासि देवि, प्रसीद। न मामेवंविधं परित्यक्तुमर्हसि।

सीता—अयि आर्यपुत्र, विपरीतमिवैतत्।

वासन्ती—देव, प्रसीद प्रसीद। स्वेनैव लोकोत्तरेण धैर्येण संस्तम्भय अतिभूमिगतविप्रलम्भमात्मानम्। कुतोऽत्र मे प्रियसखी?

रामः—व्यक्तं नास्त्येव कथमन्यथा वासन्त्यपि तां न पश्येत्। अपि खलु स्वप्न एष स्यात्। न चास्मि सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा। सर्वथा स एवैष भगवान् अनेकवारपरिकल्पनानिर्मितो विप्रलम्भः पुनः पुनरनुबध्नाति माम्।

सीता—मयैव दारुणया विप्रलब्ध आर्यपुत्रः।

वासन्ती—देव, पश्य पश्य।

पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथः
ते चैते पुरतः पिशाचवदनाः कङ्कालशेषाः खराः।
खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्तीं वहन्
अन्तर्व्याकुलविद्युदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः ॥४३॥

सीता—(सभयम्) आर्यपुत्र, तातो व्यापाद्यतेऽहमपि अपह्रिये। तस्मात् परित्रायस्व परित्रायस्व।

रामः—(सवेगमुत्थाय) आः पाप! तातप्राणसीतापहारिन्! क्व यासि।

वासन्ती—अयि देव! राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो! किमद्यापि ते मन्युविषयः।

सीता—अहो अहमप्युद्भ्रान्तास्मि।

रामः—अन्य एव अयमधुना विपर्ययो वर्तते।

उपायानां भावादविरतविनोदव्यतिकरै-
विमर्दैर्वीराणां जगति जनितादभुतरसः।
वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभूत्
कथं तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं त्वप्रतिविधः॥४४॥

सीता—निरवधिरिति हा हतास्मि मन्दभागिनी।

रामः—हा कष्टम्।

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे वीर्यं हरीणां वृथा
प्रज्ञा जाम्बवतोऽपि यत्र न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्त्तुं नलोऽपि क्षमः
सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये क्वासि मे॥४५॥

सीता—वहुमानितास्मि न पूर्वविरहम्

रामः—सखि वासन्ति, दुःखायैव सुहृदामिदानीं रामस्य दर्शनम्। कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि। तदनुजानीहि मां गमनाय।

सीता—(सोद्वेगमोहं तमसामाश्लिष्य) भगवति तमसे, कथं गच्छत्येव आर्यपुत्रः। (इति मूर्च्छति)।

तमसा—वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। ननु आवामपि आयुष्मतोः कुशलवयोर्वर्षवर्धनमङ्गलानि सम्पादयितुं भागीरथीपदान्तिकमेव गच्छावः।

सीता—भगवति, प्रसीद। क्षणमात्रमपि तावद् दुर्लभदर्शनं जनं प्रेक्षे।

रामः—अस्ति चेदानीमश्वमेधाय सहधर्मचारिणी मे—

सीता—(सोत्कम्पम्) आर्यपुत्र, का?

रामः—हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः।

सीता—(सोच्छ्वासास्रम्) आर्यपुत्र, इदानीमसि त्वम्। अहो उत्खातमिदानीं मे परित्यागलज्जाशल्यमार्यपुत्रेण।

रामः—तत्रापि तावद् वाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि।

सीता—धन्या खलु सा या एवमार्यपुत्रेण बहु मन्यते या चार्यपुत्रं विनोदयन्ती आशानिबन्धनं जाता जीवलोकस्य।

तमसा––(सस्मितस्नेहास्रं परिष्वज्य) अयि वत्से, एवमात्मा स्तूयते।

सीता––(सलज्जमधोमुखी। स्वगतम्) परिहसिताऽस्मि भगवत्या।

वासन्ती––महानयं व्यतिकरोऽस्माकं प्रसादः। गमनं प्रति पुनर्यथा कार्यहानिर्न भवति तथास्तु।

सीता––प्रतिकूला इदानीं मे वासन्ती संवृत्ता।

तमसा––वत्से, एहि गच्छावः।

सीता––(सकष्टम्) एवं करिष्यावः।

तमसा––कथं वा गम्यते यस्यास्तव।

प्रत्युप्तस्येव दयिते तृष्णादीर्घस्य चक्षुषः।
मर्मच्छेदपरैर्यत्नैराकर्षो न समाप्यते॥४६॥

सीता––नमो नमोऽपूर्वपुण्यजनितदर्शनाभ्याम् आर्यपुत्रचरणकमलाभ्याम्।

तमसा––वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

रामः–(समाश्वस्य) कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णिमाचन्द्रस्य दर्शनम्।

तमसा––अहो संविधानकम्।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत् समग्रम्॥४७॥

रामः––अयि विमानराज, इत इतः।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति)

तमसावासन्त्यौ––(सीतारामौ प्रति)।

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः
स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता।
स च मुनिरनुयातारुन्धतीको वसिष्ठ-
स्त्वयि वितरति भद्रं भूयसे मंगलाय॥४८॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

तृतीयोऽङ्कः।

अभ्यासार्थं प्रश्न

(EXERCISES)

1. Explain the following verses in Sanskrit in Tika Form

(क) करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरंगान् मैथिली यानपुष्यत्।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि।
द्रव इव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेदयोग्यः॥

(ख) सस्वेदरोमांचितकम्पितांगी
जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।
मरुन्नवाम्भःप्रविधूतसिक्ता
कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव॥

2. Translate the following verses in Hindi or English.

(क) तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिन् झटिति घटनात् स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद् दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव॥

(ख) करपल्लवः स तस्याः सहसैव जडो जडात् परिभ्रष्टः।
परिकम्पितः प्रकम्पी करान् मम स्विद्यतः स्विद्यन्॥

3. Explain the following in Hindi or English.

(क) पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।
(ख) आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते। 16
(ग) धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः। 22
(घ) तामेव शांन्तमथवा किमिहोत्तरेण। 24
(ङ) पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
(च) एको रसः करुण एव——।

4. Give the purport of the following verses in your own Sanskrit.

(क) अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम्॥

(ख) आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपै-
रन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून्।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मा-
दानन्दादपरविधं तनोति मोहम्॥

5. Write grammatical notes in the following words.

गूढ (श्लो० १)। उपकरणीभावम् (श्लो० ३)। शरदिजः (श्लो० ५)। ज्वलिष्यतः (श्लो० ९)। नैराश्यात् (श्लो० १३)। स्निग्धः (श्लो० १५)। नर्त्यमानम् (श्लो० १९)। मधुश्च्युतः (श्लो० २४)। मर्मच्छेदी (श्लो० ३१)। सैकतम् (श्लो० ३६)। औपम्यम् (श्लो० ४०)। परिभ्रष्टः (श्लो० ४१)। प्रत्युप्तस्य (श्लो० ४६)।

6. Account for the Case-endings in the following words :

यानि (श्लो० ८)। सौजन्यात् (श्लो० १३)। वारणानाम् (श्लो० १४)। त्वाम् (श्लो० १९)। एभ्यः (श्लो० २१)। दृशोः (श्लो० २२)। भवताम् (श्लो० ३२)। त्वयि (श्लो० ४८)।

7. Expound the following samases and name them :

विलोलकवरीकम् (श्लो० ४)। प्रियासहचरः (श्लो० ८)। करकिसलयतालैः (श्लो० १९)। नवकिसलयस्निग्धैः (श्लो० २२)। ललितलवलीकन्दलनिभः (श्लो० ४०)। रिपुघातावधिः (श्लो० ४४)।

8. Show your acquaintance with the following words :

पुटपाकः। स्तनयित्नुः। विकारः। विवर्तः। करुणरसः।

9. Define and explain the following technical terms :

नाटकम्। अंकः। विष्कम्भकः। नेपथ्यम्। स्वगतम्। संविधानकम्।

10. Give a critical estimate of Bhavabhuti's genius as dramatist.

टिप्पणियाँ

व्याकरणात्मक तथा व्याख्यात्मक

काव्य-भाग

रघुवंश एक महाकाव्य है। महाकाव्य की सुप्रसिद्ध परिभाषा साहित्य-दर्पण में मिलती है। वह इस प्रकार है—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥१॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥२॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्॥३॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकञ्च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा॥४॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सताञ्च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥५॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥६॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः॥७॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः॥८॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह॥९॥

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु॥१०॥

श्लोक १—जाया—पत्नी। राजा दिलीप की पत्नी का नाम सुदक्षिणा था। नोट—इस सर्ग में प्रथम श्लोक से लेकर चौहत्तरवें श्लोक तक उपजाति नामक छन्द है और तदनन्तर वंशस्थ छन्द है। दोनों के लक्षण सञ्जीवनी टीका में यथास्थान मिलेंगे। पचहत्तरवें श्लोक में मालिनी छन्द है।

श्लोक २—श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्—स्मृतियों की संख्या १८ है। इसके अतिरिक्त १८ उपस्मृतियाँ भी हैं। इन सभी ३६ स्मृतियों में मनुस्मृति सर्वश्रेष्ठ है। स्मृतियों में वेदोक्त तत्त्वों का ही विस्तार या समुपबृंहण मिलता है। इस श्लोक में उपमालंकार है। जिसके लिए कालिदास प्रसिद्ध हैं। काव्यभाग के टिप्पणी के अन्त में उपमा अलंकार का परिचय देखिए।

श्लोक ३—पयोधरीभूत०—इसे दोनों पक्षों में अन्वित करना चाहिए।

श्लोक ४—न्यषेवि=नि+सिव्+कर्मणि लुङ। मनोः—वैवस्वत मनु से आशय है जो १४ मनुओं में श्रेष्ठ हैं।

श्लोक ५—कवलैः—करणे तृतीया। तृणानाम्—शेषे षष्ठी। यहाँ समवाय सम्बन्ध है।

सम्राट्—सम्यक् राजते इति सम्राट् (सम+राज्+क्विप् कर्त्तरि)।

श्लोक ६—निषेदुषी (नि+सद्+क्वसु+ङीप्)। आददाना (आ+दा+शानच्) यह स्त्रीलिंग का रूप है।

श्लोक ७—दधानः—धारयन्। धा+शानच्। द्विपेन्द्रः—द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिबति इति द्विपः (द्वि+पा+क+कर्तरि)। द्विपानाम् इन्द्र इव इति द्विपेन्द्रः।

श्लोक ८—विनेष्यन्+वि+नी+लृट्+शतृ।

श्लोक ९—पाशभृता—पाशं बिभर्ति इति पाशभृत् वरुणः, तेन।

श्लोक १०—अभिवर्तमानम्—अभि+वृत्+शानच् कर्त्तरि=अभिवर्तमानः, तम्।

श्लोक ११—आख्यातम्—कथितम्—आ+चक्ष्+क्त कर्मणि।

श्लोक १२—आपादितवंशकृत्यम्—(१) आपादितं वंशकृत्यं यस्य तत् (यशः)। अथवा (२) आपादितं वंशकृत्यं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात् तथा। पहले प्रकार के विग्रह से यह विशेषण है, दूसरे से क्रिया-विशेषण है।

श्लोक १३—अनोकहः—अनसः शकटस्य अकं गतिं हन्ति इति अनोकहः। अनोक+हन्+ड कर्तरि। यह उपपद समास का उदाहरण है। अनोकह—वृक्ष।

श्लोक १४—विशेषा—यह शब्द यहाँ विशेषण है, किन्तु अन्यत्र संज्ञा भी होता है। गोप्तरि—सप्तमी विभक्ति। सूत्र—यस्य च भावेन भावलक्षणम्।

श्लोक १५—दिगन्तराणि—दिशाम् अन्तराणि इति। यह तुल्ययोगिता अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है—वर्ण्यानामितरेषां वा धर्मैक्यं तुल्ययोगिता (चन्द्रालोक)।

श्लोक १६—वभौ—रेजे। भा दीप्तौ+लिट्+अन्य० एक०। उपमा अलंकार।

श्लोक १७—अध्यासित=अधि+आस्+क्त कर्मणि।

श्लोक १८—आपीन=प्याय्+क्त कर्तरि। प्याय् A वृद्धौ—प्यायते इत्यादि। दूसरा रूप प्यान भी इसी धातु से बनता है।

श्लोक १९—अनुयायिनम्—अनु+या+णिनिः=अनुयायी, तम्। वनान्तात्—पंचमी विभक्ति। सूत्र—ध्रुवमपायेऽपादानम्।

श्लोक २०—पार्थिवेन—'अनुक्ते कर्तरि तृतीया' सूत्र से तृतीया है। प्रत्युद्गता=प्रति+उत्+गम्+क्त कर्मणि। इस श्लोक में उपमा अलंकार है।

श्लोक २१—प्रदक्षिणीकृत्य—अप्रदक्षिणं प्रदक्षिणं कृत्वा इति प्रदक्षिणीकृत्य (गतिसमास)। पयस्विनी—प्रशस्तं पयः अस्ति अस्याः इति (पयस्+विनिः स्त्रियाम्)। आनर्च—अर्च्+लिट्लकार, अन्यपुरुष एकवचन। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा है।

श्लोक २२—वत्सोत्सुका—वत्से उत्सुका इति। सहसुपेति समासः। उपपन्न=उप+पद्+क्त कर्मणि।

श्लोक २३—सान्ध्य—सन्ध्या+अण् । दोह—दोहनमेव दोहः दुह+घञ् भावे। दोग्ध्रीम्—दोग्धुं शीलमस्याः इति दोग्ध्री, दुह्+तृन् कर्तरि ताच्छील्ये स्त्रियाम्।

श्लोक २४—अन्वास्य—अनु+आस्+ल्यप्। सुप्तोत्थिता—पूर्वं सुप्ता पश्चात् उत्थिता। सूत्र—पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन।

श्लोक २५—धारयतः—धृ+णिच्+शतृ=धारयन्, तस्य। समम्—अव्यय। नोट—साकं, सार्धं, समं, सह—इन चारों अव्ययों के साथ तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

श्लोक २६—जिज्ञासमाना=ज्ञा+सन्+जिज्ञास्; जिज्ञास्+शानच् =जिज्ञासमाना । मुनिहोमधेनुः—होमाय धेनुः इति होमधेनुः। मुनेः होमधेनुः इति मुनिहोमधेनुः।

श्लोक २७—दुष्प्रधर्षा—दुःखेन प्रधृष्यते इति, दुस्+प्र+धृष्+खल् कर्मणि। सूत्र—ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्। प्रसह्य—(अव्यय) बलात्।

श्लोक २८—आक्रन्दितम्—आ+क्रन्द्+क्तः भावे । निवर्तयामास—नि+वृत्+णिच्+लिट्लकार इत्यादि।

श्लोक २९—तस्थिवांसम्+सम्—स्था+क्वसु+तस्थिवस्, ततः द्वितीया एकवचन । अधित्यका=अधि+त्यकन्+अधित्यका। इसी प्रकार उपत्यका शब्द भी सिद्ध होता है।

श्लोक ३०—वधाय=हन्+अप् भावे=वधः। सूत्र—'हनश्च वधः' इत्यप्। चतुर्थी विभक्ति। सूत्र—तुमर्थाच्च भाववचनात्।

श्लोक ३१—अवतस्थे—अव+स्था+लिट् (आत्मनेपद)। सूत्र—समवप्रविभ्यः स्थः।

श्लोक ३२—प्रतिष्टम्भ—प्रति+स्तम्भ्+घञ् भावे। आगस्कृतम्=आगःकृतवान् इति आगस्+कृ+क्विप् कर्तरि भूते, ततः द्वितीया-एकवचन।

श्लोक ३३—गृह्य—ग्रह्+क्यप्। आर्याणां गृह्यः इति आर्यगृह्यः। विस्माययन्=वि+स्मि+णिच्+शतृ।

श्लोक ३४—श्रमेण—करणे तृतीया। सामान्यतः 'वारणार्थे तृतीया' कहा जाता है।

उच्चय—उत्+चि+अच् कर्मणि। उच्चय का अर्थ समूह है।

श्लोक ३५—आरुरुक्षु—आरोढुम् इच्छुः इति—आ+रुह्+सन्+उ कर्तरि। किंकर—किं करोति इति, किम्+कृ+अच् कर्तरि।

श्लोक ३६—पुत्रीकृतः—अपुत्रः पुत्रः कृतः इति। सूत्र—अभूततद्भावे च्विः।

श्लोक ३७—कण्डूयमान—कण्डू+यक्+शानच्। सेनानी—सेना+नी+क्विप् कर्तरि। आलीढ—आ+लिह्+क्तः कर्मणि।

श्लोक ३८—त्रासार्थम्—त्रासाय इदम् इति त्रासार्थम्। अर्थेन नित्य-समासः विशेष्यलिङ्गता च इति समासः। व्यापारितः—वि+आ+पृ+णिच्+क्तः कर्मणि।

श्लोक ३९—क्षुधित—क्षुध्+क्तः कर्तरि। तृप्त्यै—चतुर्थी विभक्ति। सूत्र—नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च। सुरद्विषः—सुरान् द्वेष्टि इति, तस्य। सुर+द्विष्+क्विप् कर्तरि, ततः षष्ठी एकवचन।

श्लोक ४०—विहाय—वि+हा+ल्यप्। शस्त्रभृताम्—शस्त्र+भृ+क्विप् कर्तरि, ततः षष्ठी बहुवचन।

श्लोक ४१—अधिराजः—अधिको राजा इति अधिराजः, प्रादि-समासः। इसमें समासान्त टच् प्रत्यय है। सूत्र—राजाहःसखिभ्यष्टच्। तत्पुरुष समास। गिरिशः—गिरौ शेते इति, गिरि+शी+ड कर्तरि।

श्लोक ४२—जडीकृतः—अजडो जडः कृतः जडीकृतः? सूत्र—अभूततद्भावे च्विः। मुमुक्षन्—मोक्तुम् इच्छन् इति मुच्+सन्+उः कर्तरि।

श्लोक ४३—विवक्षुः—वक्तुम् इच्छुः इति। वच्+सन्+उः कर्त्तरि।

श्लोक ४४—मान्यः—मान् पूजायाम्+ण्यत् कर्मणि। ये—षष्ठी विभक्ति, सूत्र—कृत्यानां कर्तरि वा। नोट—यत्, ण्यत्, क्यप्, तव्यत् और अनीयर्—इन पांचों प्रत्ययों का समवेत नाम 'कृत्य प्रत्यय' हैं।

श्लोक ४५—शरीर—शीर्यंते इति। शृ+ईरन् (औणादिक प्रत्ययः)। निर्वर्तयितुम्—निर्+वृत्+णिच्+तुमुन्। प्रसीद—प्र+सद्+लोट्+ततः मध्यम०, एकवचन।

श्लोक ४६—पार्श्ववर्ती—पार्श्व वर्तितुम् शीलमस्य इति। पार्श्व+वृत्+णिनिः ताच्छील्ये।

श्लोक ४७—कान्त—कम्+क्तः वर्तमाने। हातुम्—हा त्यागे+तुमुन्।

नोट—हा धातु के रूप जहाति, जहीतः, जहति इत्यादि हैं।

श्लोक ४८—त्वदन्ते—सप्तमी विभक्ति। यस्य च भावेन भावलक्षणम्—यह सूत्र हैं। उपप्लवः—उप+प्लु+अप् भावे। पंचमी विभक्ति। सूत्र—भीत्रार्थानां भयहेतुः। प्रजा—(१) सन्तान (२) जनता। प्रजा स्यात् संततौ जने।

श्लोक ४९—कोटिशः (अव्यय)—कोटि+शस् वीप्सायाम्। संस्कृत में अव्यय क्रिया-विशेषण का भी काम देते हैं और विशेषण का भी, और कभी-कभी इनमें पुनः प्रत्यय जोड़कर भी विशेषण बना लिया जाता है।

श्लोक ५०—भोक्ता—भुज्+तृच् कर्तरि। ऊर्जस्वलं=ऊर्जस्+वलच्। राज्य—राज्ञः भावः+कर्म वा इति। राजन्+यक्।

श्लोक ५१—एतावत्—एतत् परिमाणम् अस्य वचसः इति एतद्+वतुप्। मृगेन्द्रे—सप्तमी विभक्ति। भावे सप्तमी या सति सप्तमी।

श्लोक ५२—निशम्य—नि+शम्+ल्यप्। निरीक्ष्यमाणः—निर्+ईक्ष्+कर्मणि शानच्।

श्लोक ५३—क्षतात्—पञ्चमी विभक्ति। सूत्र—भीत्रार्थानां भयहेतुः।

श्लोक ५४—विश्राणन—वि+श्रण्+णिच्+ल्युट् भावे। अनूना—न ऊना इति अनूना तुल्या इत्यर्थः। नञ् तत्पुरुषसमासः।

श्लोक ५५—न्याय्या—न्यायात् अनपेता इति । न्याय+यत्। मोचयितुम्—मुच्+णिच्+तुमुन् । विहतः—वि+हन्+क्त।

श्लोक ५६—परवान्—परः अस्ति अस्य इति परवान्। पर्+मतुप्। विनाश्य—वि+नश्+णिच्+ल्यप्।

श्लोक ५७—अहिंस्य—नञ् (अ)+हिंसा+ण्यत्; अनास्था—न आस्था इति। आस्था—आ+स्था+अङ भावे।

श्लोक ५८—सम्बन्धः—सम्+बन्ध्+घञ् भावे। आहुः—ब्रू+लट्लकार, ततः अन्यपुरुष, बहु० । आह, आहतुः, आहुः इत्यादि । ये वैकल्पिक रूप हैं। मुख्य रूप हैं—ब्रवीति, ब्रूतः, ब्रुवन्ति इत्यादि।

श्लोक ५९—उक्तवते—वच्+क्तवतु=उक्तवान्, तस्मै।

श्लोक ६०—उत्पश्यन्—उत्+दृश्+शतृ।

श्लोक ६१—अमृतायमानम्—अमृतमिव आचरति इति अमृतायमानम्। अमृत+क्यङ+शानच्। उत्थितम्—उत्+स्था+क्तः।

श्लोक ६२—उद्भाव्य—उत्+भू+णिच्+ल्यप्।

श्लोक ६३—भक्त्या—हेतौ तृतीया । गुरौ—विषयाधिकरणे सप्तमी।

श्लोक ६४—मानितार्थी—मानिताः अर्थिनः येन सः मानितार्थी। मानित—मान्+क्तः कर्मणि।

श्लोक ६५—कामः—कम्+घञ् कर्मणि । प्रतिश्रुत्य—प्रति+श्रु+ल्यप् (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् इति तुगागमः)।

श्लोक ६६—अनुज्ञा—अनु+ज्ञा+अङ भावे।

श्लोक ६७—विज्ञापिता—वि+ज्ञा+णिच्+क्तः कर्मणि, ततः टाप्। हैमवतात्—हिमवतः अयम् इति हैमवतः। (हिमवत्+अण्) तस्मात्। यह कुक्षेः का विशेषण है। कुक्षि शब्द अञ्जलि, सन्धि, महिमा आदि की ही भाँति पुंलिंग में होता है।

श्लोक ६८—तस्याः—षष्ठी विभक्तिः । कर्तरि षष्ठी। सूत्र—कर्तृकर्मणोः कृति।

श्लोक ६९—स्तन्यम्—स्तनयोः भवम् इति। स्तन+यत्। मूर्तं—मूर्च्छ्+क्तः कर्तरि।

श्लोक ७०—प्रास्थानिक—प्रस्थान+ठञ्। प्रस्थापयामास—प्र+स्था+णिच्+लिट्लकार।

श्लोक ७१—हुताशम्—हुतम् अश्नाति इति हुताशः; हुत+अश्+अण्, तम्। सवत्सा—वत्सेन सह वर्तमाना इति। तुल्ययोग—बहुव्रीहि समास।

श्लोक ७२—सहिष्णुः—सोढुम् शीलमस्य इति। सह+इष्णुच्—कर्तरि ताच्छील्ये।

श्लोक ७३—ओषधि और ओषधी दोनों रूप ठीक हैं। जड़ी-बूटी से आशय है। चिकित्सालय में बनी हुई दवा को औषध कहते हैं। ओषधि का प्रयोग जातिमात्र की विवक्षा में होता है और औषध का प्रयोग व्यक्तिमात्र की विवक्षा में होता है।

श्लोक ७४—अभिनन्द्यमानः—अभि+नन्द्+शानच् कर्मणि।

श्लोक ७५—निष्ठ्यूत—नि+ष्ठीव्+क्तः कर्मणि। ऐशम्—ईशस्य इदम् ऐशम्।

श्लोक ७६—सुखाः—सुखयन्ति इति। सुख+णिच्+अच् कर्तरि। ववुः—वा+लिट्लकार। इसके रूप वाति वातः वान्ति इस प्रकार चलते हैं।

श्लोक ७७—शंसते—शंस्+शतृ=शंसन्, तस्मै शंसते।

श्लोक ७८—नृपस्य—शेषे षष्ठी। उदधिः—उदकं धीयते अस्मिन् इति=उदक+धा+किः अधिकरणे। सूत्र—उदकस्य उदः संज्ञायाम्—इस सूत्र से उदक के स्थान पर उद हो गया।

श्लोक ७९—प्रमोदः—प्र+मुद्+घञ् भावे। प्रमोदामोदसंमोदाः इत्यमरः। व्यजृम्भन्त—वि+जृम्भ्+लङ, अन्य०, बहु०। रूपक्रम है—जृम्भते जृम्भेते जृम्भन्ते इत्यादि।

श्लोक ८०—संयतः सम्+यम्+क्तः कर्मणि। विसर्जयेत्—वि+सृज्+णिच्+विधिलिङ।

श्लोक ८१—हरिदश्वदीधितेः=हरितः नामतो वर्णतश्च अश्वाः यस्य सः हरिदश्वः। सूर्य के अश्व हरिद्वर्ण के हैं और उनका नाम भी हरित् हैं। इन्द्र के घोड़ों का नाम 'हरि' है, हरित् नहीं।

श्लोक ८२—शरजन्मना—शरे शरवने जन्म यस्य सः शरजन्मा कार्तिकेयः तेन।

श्लोक ८३—प्रणिपातः=प्र+नि+पत्+घञ् भावे।

श्लोक ८४—काकपक्षकः—काकपक्ष इव इति काकपक्षकः (कन् इवार्थे)। वाङ्मयम्—वाचः विकारः इति। वाच्+मयट् (विकारार्थे)।

श्लोक ८५—क्रिया हि प्रसीदति। सत्पात्र के विषय में किया हुआ प्रयत्न सदैव सफल होता है। यह श्लोक अर्थान्तरन्यास अलंकार का रमणीय उदाहरण है।

श्लोक ८६—क्रमात्—क्रमम् अवलम्ब्य। वार्तिक—ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च।

श्लोक ८७—रौरवीं—रुरोः मृगविशेषस्य इयम् इति रौरवी। रुरु+अण्+ङीप्।

श्लोक ८८—महोक्षः—महान् उक्षा इति महोक्षः। समासान्त अच् सूत्र—"अचतुरविचतुर......।"

श्लोक ८९—अंसलः—अंसौ अस्य स्तः इति अंसलः। अंस+लच्।

श्लोक ९०—लघयिष्यता—लघु+णिच्+शतृ (लृट्)+लघयिष्यन् तेन। युवराजशब्दभाक्—युवराजशब्दं भजते इति युवराजशब्दभाक्+ युवराजशब्द+भज्+ण्विः कर्तरि। सूत्र—'भजो ण्विः।'

श्लोक ९१—युवराजसंज्ञितम्—युवराजः इति संज्ञा संजाता अस्य इति युवराजसंज्ञितम्। यह पद तदास्पदम् का विशेषण है। युवराजसंज्ञा+ इतच्। सूत्र—तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्।

उपमा अलङ्कार : लक्षण और प्रशस्ति

उपमा—यह अनेक अर्थालंकारों का बीजरूप है। रूपक, उत्प्रेक्षा तुल्ययोगिता, दीपक आदि अनेक अलङ्कारों के मूल में यही अलङ्कार है। वाल्मीकीय रामायण तथा कालिदास के रघुवंश में शतशः उपमाएँ भरी पड़ी हैं। जैसे एक नटी, भिन्न-भिन्न वेश बदलकर, रंगमंच पर आती है और दर्शकों का मनोरञ्जन करती है, उसी प्रकार उपमा भी नाना अलङ्कारों का परिधान पहनकर सहृदयों के चित्त को चमत्कृत करती है। अप्पय दीक्षित ने अपनी पुस्तक चित्रमीमांसा में लिखा है—

उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।
रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः॥

राजशेखर ने उपमा की प्रशस्ति निम्नलिखित श्लोक में की है।

अलङ्कारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम॥

परिभाषा और उदाहरण—

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।
हंसीव कृष्ण ते कीर्तिः स्वर्गङ्गामवगाहते॥ (चन्द्रालोक)

जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का रमणीय सादृश्य स्पष्ट रूप से कह दिया जाय वहाँ उपमा अलङ्कार होता है। उपर्युक्त उदाहरण में 'कीर्ति' उपमेय है, 'हंसी' उसका उपमान है। 'इव' साधर्म्यवाचक शब्द है तथा स्वर्गङ्गावगाहन साधारण धर्म है। जहाँ पर उपमा के घटक चारों अंग (उपमेय, उपमान, वाचक और साधारण धर्म) उपस्थित हों, वहाँ पूर्णोपमा होती है। जहाँ इनमें से एक, दो या तीन के प्रतिपादक शब्दों का अभाव हो, वहाँ लुप्तोपमा होती है।

उत्तररामचरितम्

तृतीयोऽङ्कः

व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ

सर्वप्रथम छात्रों के हितार्थ नाट्यशास्त्र के कुछ प्रसंगप्राप्त पारिभाषिक शब्दों के लक्षण दिए जा रहे हैं।

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
सुखदुःखसमुद्भूतनानारसनिरन्तरम् ॥१॥
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ॥२॥
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः।
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ॥३॥
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यं निर्वहणेऽद्भुतम् ॥ (साहित्यदर्पण)

• • • • • •

प्रत्यक्षनेतृचरितो विन्दुव्याप्तिपुरस्कृतः।
अंको नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः ॥ (दशरूपक)

आशय यह है कि अंक में नाटकादि के नायक का चरित्र, प्रत्यक्ष रूप से दिखाया जाता है अर्थात् या तो नायक स्वयं मंच पर आता है या मंच पर घटित घटना उसके जीवन से साक्षात् सम्बद्ध होती है। अंक से विन्दु नामक अर्थ-प्रकृति व्याप्त पायी जाती है तथा वह नाना प्रकार के नाटकीय प्रयोजन के सम्पादन तथा रस का आश्रय होता है।

कुशीलवकुटुम्बस्य स्थली नेपथ्यमिष्यते।

यवनिका के पीछे का स्थान नेपथ्य कहा जाता है जहाँ पर नट लोग भूमिका के अनुकूल, वेश-रचना करते हैं।

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।
एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः ॥ (दशरूपक)

विष्कम्भक, नाटक में घटित घटनाओं या भविष्य में घटित होने

वाली घटनाओं का सूचक है, जिसमें मध्यम पात्र द्वारा संक्षेप में कथांशों की सूचना दी जाती है। यह विष्कम्भक दो प्रकार का होता है—शुद्ध और संकीर्ण (मिश्र) । यदि किसी विष्कम्भक में सभी पात्र मध्यम कोटि के हों, तो वह शुद्ध कहा जाता है। यदि एक नीच पात्र भी हो तो वह मिश्र या संकीर्ण विष्कम्भक कहा जाता है। नोट—यदि दोनों ही पात्र अधम होंगे तो वहाँ विष्कम्भक न होकर 'प्रवेशक' होगा। नाटकों में राजा, राज-मन्त्री, पुरोहित आदि उत्तम पात्र हैं तथा चोर, सिपाही, मछुआ आदि नीच पात्र हैं। शेष सभी पात्र मध्यम पात्र हैं।

"The third act, which excels in a masterly delineation of the sentiment of pathos, is absolutely the product of the poet's imaginative power and displays the poet's deep knowledge of the workings of human mind, its passions and emotions, and the various phases which the tender emotion of love passes through different circumstances and conditions."

तृतीय अंक करुणरस के परिपाक की दृष्टि से बहुत ही सफल बन पड़ा है। इसीलिए श्री विधुभूषण गोस्वामी ने अंग्रेजी में उपर्युक्त अंश लिखा है।

सम्भ्रान्ता—घबड़ाई हुई।

श्लोक १—पुटपाक—किसी बर्तन के मुँह को मिट्टी से ढँककर उसमें सोना तपाने के व्यापार को पुटपाक कहते हैं।

विस्रम्भ—विश्वास (गोपनीय बातें)। निसर्ग—स्वभाव। आभोग—विस्तार।

श्लोक २—वीची—तरंग। शीकरक्षोद—जलकणों के सूक्ष्म अंश। किञ्जल्क—केशर। स्वैरं स्वैरं—मन्दं मन्दम्। स्तन्य—दुग्ध।

श्लोक ३—विपाक—परिणाम । व्यपदेश—व्याज (बहाना)। व्यापृत—लगे हुए। यजन—यज्ञ। प्रत्यन्तरीभव—अनुचरीभव।

श्लोक ४—कवरी—केशपाश। विरहव्यथेव—उत्प्रेक्षा अलंकार।

श्लोक ५—ग्लपयति—सुखा-सुखा कर क्षीण कर रहा है।

श्लोक ६—सल्लकी—गजों के प्रिय वृक्ष-विशेष। करिकलभक—हाथी का बच्चा। अभियुक्त—आक्रान्त कर लिया गया है। स्तनित—मेघगर्जन।

श्लोक ७—निक्वाण—शब्द। स्तनयित्नु—मेघ।

श्लोक ८—यानि—द्वितीया विभक्ति। उपान्वध्याङ्वसः इति कर्मत्वम्। परिसर—सामीप्य।

श्लोक ९—उत्पीड—राशि। आवृणोति—आच्छादित कर लेता है।

श्लोक १०—निरत—नितरां रतः।

श्लोक ११—आश्च्योतन—द्रव रूप में क्षरण। कन्दल—नवीन अंकुर।

श्लोक १२—जडता—आनंद की अधिकता से उत्पन्न बुद्धिशून्यता। साध्वस—भय। अभ्युपपन्न—अनुगृहीत। निरनुक्रोशा—निर्दया। अनुबन्ध—अवस्था।

श्लोक १३—स्तम्भित—जड़ीभूत। सौजन्य—सुजनता।

श्लोक १४—प्रसाद—प्रसन्नता।

शल्य—बाण। नूनं भ्रमः। पुनः पुनः सीता की भावना के कारण यह भ्रम हो गया है।

श्लोक १५—वारण—हाथी। कल्याण—अंगनापरिष्वङ्गरूपी मंगल।

श्लोक १६—काण्ड—डंडी। पुष्कर—कमल। गण्डूष—कुल्ली या मुखपूर्ति। अन्तराल—ग्रीवा। काकली—ईषत्कल या धीमा शब्द।

श्लोक १७—दम्पती—पतिपत्नी। 'दम्पती जम्पती जायापती भार्यापती च तौ' इत्यमरः। ग्रन्थि—यह शब्द भी कुक्षि, अञ्जलि, सन्धि आदि की भाँति पुंलिंग में है।

श्लोक १८—कदम्ब—नीपवृक्ष। शिखण्डी—मयूर।

श्लोक १९—चटुल—सुन्दर। ताण्डव—नृत्य।

श्लोक २०—देव्याः स्मरति। षष्ठी विभक्ति। सूत्र०—अधीगर्थदयेशां कर्मणि।

श्लोक २१—कान्तासखस्य। यहाँ समासान्त टच् है। सूत्र—राजाहःसखिभ्यष्टच्।

श्लोक २२—कुवलय—नीलकमल। करण—इन्द्रियाँ। पाण्डुच्छाय—श्वेतप्रभ। उन्नेतव्यः—अनुमेयः।

श्लोक २३—पूर—प्रवाह। विलुलित—विकीर्ण। उत्तान—पूर्णरूप से खुली हुई, स्फीत या विस्तृत। दुग्धकुल्या—दूध की नहर। उत्प्रेक्षा अलंकार का रमणीय उदाहरण।

श्लोक २४—अर्घ्य—पूजार्थं सामग्री। मधुश्च्युतः—मधु श्च्योतन्ति क्षरन्ति इति मधुश्च्युतः (मधु+श्च्युत्+कर्त्तरि क्विप्)—मकरन्दवर्षिणः इत्यर्थः। इससे मधुपर्क दान का भी प्रतिपादन हो गया। शकुनि—पक्षी।

श्लोक २५—नीवार—धान्यविशेष। शष्प—नये नये घास के तिनके। प्रस्तर—पत्थर।

श्लोक २६—जीवितम्—जीवनम्—नपुंसके भावे क्तः। किमिहोत्तरेण—शेष वाक्य में इतना अधिक दुःख था कि वासन्ती कह न सकी। भाव यह है कि एसी सीता को आपने कैसे छोड़ दिया।

श्लोक २७—हरिणीदृशः—सीतायाः।

श्लोक २८—हायन—वर्ष 'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत् समाः' इत्यमरः। मृणालकल्पा—कमलनालतुल्या। क्रव्याद्—मांसभोजी राक्षसादि।

श्लोक २९—पूरोत्पीड—प्रवाह का आधिक्य। परीवाह—जल-निःसारण। प्रतिक्रिया—प्रतीकार।

श्लोक ३०—अभियुक्त—तत्पर। विधिवत्—यथाशास्त्रम्। विलपन-विनोदः—विलपनेन विनोदः इति। उच्छ्वासः—प्राणधारणम्।

श्लोक ३१—मर्मच्छेदी—मर्म छेत्तुं शीलमस्य सः हृदयसन्धिविदारकः अरुन्तुद इति यावत्। न कृन्तति—न छिनत्ति।

पौरजानपदाः—पुरे भवाः पौराः पुरवासिनः। जनपदे भवा जानपदाः देशवासिनः—प्रजावर्गाः।

श्लोक ३२—भावाः—पदार्थाः—सरिच्छैलकाननपक्षिमृगादयः। 'पदार्थो भाव उच्यते' इत्यमरः।

श्लोक ३३—न च रामो न जीवति—आज भी मैं जी रहा हूँ, इससे बढ़ कर और क्या धैर्य हो सकता है।

श्लोक ३४—स्नेहार्द्राः—अनुरागशीतलाः । शोकदारुणाः—दुःखेन रूक्षाः । यहाँ अपह्नुति अलंकार है।

श्लोक ३५—तिरश्चीन—तिर्यग्भूत या तिरछा । अलातशल्य—उल्कामयी लोहकीलाग्र । प्रत्युप्त—निखात । शोकशंकु—दुःखरूपी कील । सोढः—सहतेः कर्मणि क्तः ।

श्लोक ३६—उज्जृम्भण—अभिवृद्धि । स्तम्भन—रोकना, प्रतिहति । अप्रतिहतरयः—अनिवारितवेगः । ओघ—प्रवाह या राशि । सैकतम्—सिकतार्चितम् इति यावत् ।

श्लोक ३७—परिदुर्मनायितमिव—परिकुपितमनस्कमिव स्थितम् । न तु वस्तुतः कुपितहृदयम् । कातर्य—अपराधजन्य भय । अरविन्दकुड्मलनिभः—कमलकोषसदृशः । मुग्ध—सुन्दर ।

श्लोक ३८—हा हा—दुःख की अतिशयता का सूचक है। देहबन्धाः—शरीर के अंगों की सन्धियाँ । जातिवाचक होने के कारण एकवचन का प्रयोग है—जातौ एकत्वम् इति भावः। सीदन्—विशीर्णीभवन् । विधुरः—ज्ञानादिशून्यः। स्थगयति—आवृणोति, आच्छादित किए ले रहा है।

श्लोक ३९—प्रलेप—लेपन के साधन द्रव्य। शरीरधातु—संख्या में सात हैं—रस, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा और शुक्र। यहाँ धातु का अर्थ है—शरीरपुष्टि के जनक पदार्थ।

श्लोक ४०—परिणयविधि—विवाहविधि । अमृतशिशिरैः—सुधाशीतलैः। तुहिननिकर—हिमसमूह। ललित...निभः—सुकुमार लवली नाम की लता के अंकुर के सदृश।

श्लोक ४१—करपल्लवः—करः पल्लवः इव इति समासविग्रहः।

श्लोक ४२—सस्वेद...ङ्गी—सस्वेदानि च रोमाञ्चितानि संजातपुलकानि च कम्पितानि च अंगानि यस्याः सा तथोक्ता जाता। कोरक—कुड्मल या मुकुल । कदम्बयष्टि—कदम्बवृक्ष की शाखा। उपमा अलंकार।

श्लोक ४३—पौलस्त्य—रावण । कार्ष्णायस—कृष्णं च तदयश्च इति कृष्णायसम् । तस्य विकारः इति कार्ष्णायसः। (कृष्णायस्+अण्) लोहे का बना हुआ। पक्षति—पक्षमूल। द्याम्—आकाशम्।

श्लोक ४४—व्यतिकर—सम्बन्ध । अप्रतिविधः—जिसका कोई प्रतीकार नहीं है।

श्लोक ४५—प्रज्ञा—बुद्धि। पत्रिन्—बाण।

श्लोक ४६—प्रत्युप्त—कीलित। आकर्षो न समाप्यते—अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी राम-दर्शन की क्रिया से नेत्र हटाये नहीं जा पाते हैं।

श्लोक ४७—इस श्लोक में भवभूति का रससम्बन्धी दर्शन पूर्णतया प्रस्फुटित हुआ है। इस अंक के आदि में भी भवभूति ने कहा था—'पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः'। निमित्तभेदात्—विभाव-अनुभाव आदि के भेद से। विवर्त—अन्य रूप तो तत्त्वतः उस वस्तु से भिन्न नहीं हैं, जैसे यदि रज्जु को सर्प समझ लें तो यह विवर्त है, इसी प्रकार ब्रह्म का विवर्त जगत् है तथा शब्दब्रह्म का विवर्त अर्थ है। विकार—तत्त्वतः भिन्न रूप है, जैसे दूध का विकार दधि है। मृत्तिका का विकार घट है। दारु का विकार यूप है और हिरण्य का विकार कुण्डल है।

इस दृष्टि से आवर्त्त, बुद्बुद आदि जल के विवर्त मात्र हैं, विकार नहीं हैं, किन्तु पुनरुक्ति दोष के निरासार्थ दुबारा विकार शब्द का प्रयोग महाकवि ने किया है, जैसे आवर्त्त आदि तत्त्वतः जल से भिन्न नहीं हैं उसी प्रकार शृंगार, वीर आदि अन्य रस भी वस्तुतः करुण रस ही के विवर्त हैं, मुख्य रस करुण ही है।

रस की प्रधानता के विषय में वैमत्य है। भोज तथा आनन्दवर्धन आदि शृंगार को ही परम आह्लादमय रस मानते हैं। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने शान्तरस को मूर्धन्य आसन प्रदान किया है। पण्डितराज जगन्नाथ ने भी इस बात को माना है कि शान्त प्रधान रस है। विश्वनाथ ने नारायण शास्त्रकार के अनुसार अपने साहित्यदर्पण में अद्भुत को ही प्रधान रस प्रतिपादित किया है। जो भी हो, भवभूति का चरमपरम सिद्धान्त यही है—

"एको रसः करुण एव"

श्लोक ४८—अवनि—पृथ्वी। अमरसिन्धु—देवनदी या गंगाजी। भद्र—कल्याण। भूयस्—प्रचुर या प्रभूत।

इति शुभम्

क्रि. न्यूजीलैंड

प्रथम टेस्ट मैच – बम्बई – १८ – २३ नवम्बर
द्वितीय " " कानपुर – २६ – २ दिसम्बर
तृतीय " " मद्रास – [illegible]

